संपादनः
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादकः
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकनः
शिवेंद्र पांडिया
धनंजय खिरवड़कर

सहयोगः
टुलटुल विश्वास
जया विवेक
शशि सबलोक

मुखपृष्ठः
दूध पीता हाथी का बच्चा
(आईविटनेस एलिफेन्ट गाईड से)

पिछला पृष्ठः
दुनिया का राजनैतिक मानचित्र
(पीटर्स एटलस पर आधारित)

मुखपृष्ठ पर संदर्भः
अनीता वैद्य

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका

अंक-3, जनवरी-फरवरी 1995

संपादन एवं वितरणः

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद- 461 001 (म.प्र.)
फोनः 07574 - 3518

वार्षिक सदस्यता (6अंक) : 35 रुपये
(एकलव्य के नाम से ड्राफ्ट/मनीऑर्डर से भेजें)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित।

इस अंक में

दुनिया का नक्शा
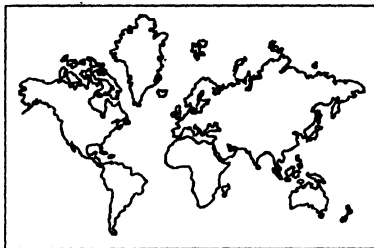
क्या हम जो नक्शा देखते हैं वह सही सही दिखाता है कि दुनिया कैसी है? कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको लगा कि इस नक्शे और ग्लोब में कुछ फर्क है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है? 51

'ह' में बड़े 'आ' की मात्रा 'हा'

शिक्षक के लिए डायरी लिखना क्यों महत्वपूर्ण है? ताकि वह कक्षा में आज किए गए अपने प्रयासों का विश्लेषण कर सके और कुछ नया ढूंढ सके जिससे कि बच्चे कुछ सीख सकें। ऐसी ही एक डायरी के अंश - 41

प्रिय संपादक,

संदर्भ के दोनों अंक पढ़े। मेरा एक सुझाव है कि संदर्भ में प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक शिक्षकों के लिए भी ऐसी सामग्री प्रकाशित की जाए जिससे उनको मदद मिले। क्योंकि प्राथमिक शाला तक बच्चों की उम्र ऐसी होती है कि वे तब अपने मस्तिष्क में प्रत्ययों का निर्माण करते हैं, शिक्षकों को प्रत्यय निर्माण और दृष्टिकोण में अनेक कठिनाइयां आती हैं। कभी-कभी शिक्षकों में उस दृष्टिकोण का अभाव होता है। इस दिशा में यदि संदर्भ में सामग्री हो तो शिक्षकों को बहुत मदद मिलेगी।

मीना जोशी
व्याख्याता,
पागनीस पागा, इंदौर

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' के लेख जहाँ तार्किक क्षमता बढ़ाने में सहयोगी हैं वहीं संदर्भ सामग्री के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं।
दूसरे अंक में 'इतिहास - ऐसे भी मिलते हैं सुराग' लेख विषय में रोचकता लाने और चिंतन को बढ़ावा देने में सार्थक कदम है। यतीश कानूनगो का लेख 'आगे पाठ पीछे सपाट' वर्तमान शैक्षणिक स्तर का एक नमूना पेश करता है। मैं सुझाव देना चाहूंगा कि स्थानीय परिस्थितियों से जुड़े लेख एवं सामग्री ज़रूर दी जाए। इससे शिक्षकों एवं छात्रों को मदद मिलेगी।

राजेंद्र दुबे (शिक्षक)
घाटली, इटारसी
ज़िला होशंगाबाद

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का अंक मिला। मैं काफी समय से इस तरह की पत्रिका की कल्पना कर रहा था। मेरे विद्यालय के बच्चों ने पत्रिका को बहुत चाव से पढ़ा। इसका अंदाज़ा शायद इस बात

आपत्ति है ....

प्रिय संपादक,
आपने 'आया समझ में' लेख का अंत यह कह कर किया है –"फिर भी आगे बढ़ने का रास्ता तो किसी तरह ढूंढना होगा।"
इस निष्कर्ष पर मेरे कुछ सवाल हैं – मुझे ऐसा लगता है कि किसी भी बात को समझने, ग्रहण करने, आत्मसात करने का सवाल अंततः 'डिग्री' का सवाल है या यूं कहें कि 'स्तर' का सवाल है। समझ के अलग-अलग स्तर होते हैं।
दिन-रात और ऋतु परिवर्तन के बारे में आपकी जो समझ है उसके आधार पर आप कैसे कह सकते हैं कि वही सही है? हमें कैसे पता चला कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है? अगर हम याद करें तो पाएंगे कि हमें अपनी भूगोल की किताबों में पढ़कर पता चला था। किताब में रेखाचित्र वगैरह भी थे और तब पढ़कर वो बातें ठीक लगी थीं। और अब अगर हम डूबते सूरज के साथ सामने आते क्षितिज को देखें और कहें कि यह देखो पृथ्वी घूम रही है - वाह! तो शायद हम कुछ हद तक महसूस कर पाएंगे कि भूगोल हमसे क्या कहता है! पर एक हद के बाद तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता... क्योंकि, हो सकता है कि हमें डूबते सूरज के समय के

से लग सकता है कि मेरे शहर की रेडियो की दुकान से चुंबक और तार लेने के लिए बच्चों में होड़ लगी हुई थी, शायद उन्होंने 'चलती का नाम मोटर' को समझ लिया था। 'संदर्भ' में कुछ मॉडल बनाने के सस्ते तरीके देते रहें ताकि शिक्षक ऐसे मॉडल तैयार कर पढ़ाने के लिए सहायक सामग्री जुटा पाएं।

कल्याण सिंह रावत
ज़िला विज्ञान कांग्रेस
चमोली (उ.प्र.)

प्रिय संपादक,

संदर्भ का दूसरा अंक पढ़ा। रोहित धनकर का लेख 'कुछ बातें - बीते ज़माने की' प्रासंगिक लगा। मेरा लेखक एवं आपसे अनुरोध है कि लेख में बताए ताश के पत्तों का गणित अगर सुलझा दें तो हमारी जिज्ञासा भी शांत होगी।

नागरसिंह शर्मा
उप प्रधानाध्यापक, भादरा
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

कारण ये नहीं...

प्रिय संपादक,

मूंगफली में निषेचित फूल ज़मीन की तरफ जाता है और फिर भूमिगत हो जाता है यह सही है - परन्तु यह डंठल की लंबाई बढ़ने और नीचे की ओर झुक जाने के कारण नहीं है। दरअसल मूंगफली के फूल में अंडाशय और पुष्पासन के बीच एक ऊतक पाया जाता है (इसे अंतर्वेशी प्रविभाजी ऊतक कहते हैं)। जैसे ही फूल निषेचित होता है यह ऊतक क्रियाशील हो जाता है। इस ऊतक के क्रियाशील होने से जो नई कोशिकाएं बनती हैं वे अंडाशय और पुष्पासन के बीच एक कमज़ोर-सा डंठल बनाती हैं जिसे गायनोफोर कहते हैं। निषेचन के बाद अंडाशय के फल में बदलने के कारण अंडाशय भारी होता जाता है जिसका वज़न नहीं संभाल पाने के कारण गायनोफोर नीचे को झुकता जाता है और धीरे-धीरे ज़मीन में धंसता जाता है

डॉ. ओ.पी. जोशी
इंदौर

बादलों को देखना ही बहुत अच्छा लगता हो - या मानसून की बारिश का ज़ोरों से गिरना या ठंड में गर्म कम्बल में दुबकना....।
क्यों न बच्चों को अपनी प्रिय ऋतु पर कविता लिखने के लिए प्रेरित किया जाए - शायद वे जो 23 डिग्री का झुकाव न समझते हों जानदार नन्हें कवि निकलें! और हो सकता है कुछ बच्चों को भक-भक करता इंजन अच्छा लगता हो.... और काला-काला धुआं और सीटी का गूंजना... और वे सोच रहे हों कि ये दोनों (लेखक) यह जानने पर क्यों उतारू हैं कि मैं ऋतुओं के बारे में कितना समझ गया हूं? मुझे सब पता है पर बस नहीं बताना.... मुझे ..... मैं अपना मुँह नहीं खोलने वाला.... ये पूछती रहें....
कुरेदती रहें... मेरा मतलब है कि बच्चे कभी-कभी बहुत 'मूडी' हो जाते हैं - है न! बहुत ज़िद्दी, बहुत सनकी - गोपनीय!
पर यह भी तो हो सकता है कि लेखकों ने यह लेख सिर्फ इसलिए लिखा हो कि शिक्षक तथा अन्य लोग ऐसे मुद्दों के बारे में सोचें - और लेखक स्वयं इस बात को इतना महत्वपूर्ण नहीं मानते कि बच्चों को ऋतु परिवर्तन आदि समझाने का कोई-न-कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा!!

राजा मोहंती, इंडस्ट्रियल डिज़ाइन सेंटर, आई. आई. टी., बम्बई

बहस से निकले निष्कर्ष

• राजेन्द्र दुबे

बच्चों के पास भी जानकारी का एक भंडार होता है – खास तौर पर अपने आसपास की चीज़ों के बारे में। एक विवादास्पद विषय पर बिना अपना मत थोपे कक्षा में सामूहिक चर्चा से निष्कर्ष निकालने का एक शिक्षक का प्रयास।

कक्षा छठवीं में छात्रों के साथ पोषण के संदर्भ में जंतुओं और उनके भोजन पर चर्चा चल रही थी। टोलियों में बंटे विद्यार्थी बहस कर रहे थे। जब किसी जंतु के भोजन को लेकर सभी विद्यार्थी सहमत हो जाते तो जंतु का नाम एवं उसका भोजन एक तालिका में शामिल कर लिया जाता। अब तक तालिका में भैंस, बिल्ली, चूहा, कौआ, बकरी, मुर्गी, शेर का नाम एवं भोजन शामिल किया जा चुका था। इसी दौरान टोली क्र. 2 के एक छात्र ने जंतु का नाम सर्प एवं उसका भोजन कीड़े, मकोड़े, मेंढक, दूध, बताया। छात्रों के बीच चर्चा चली और सहमति के बाद इसे तालिका में शामिल कर लिया गया। मैंने भी इस चर्चा में शामिल होते हुए सांप की प्रकृति, उसके भोजन एवं सर्प जैसे अन्य जंतुओं के भोजन संबंधी जानकारी पर बच्चों से प्रश्न पूछे।

लगभग सभी विद्यार्थी ग्रामीण परिवेश के थे और सांप के बारे में उनकी जानकारी अच्छी थी। इसलिए सभी ने चर्चा में पूरी तरह भाग लिया। टोली क्र. 3 के एक छात्र ने बताया कि उसने सर्प को कीड़े-मकोड़े पकड़ते हुए देखा है तो इसी टोली के एक और विद्यार्थी ने सर्प को मेंढक निगलते हुए देखा था। दूसरी तरफ अनेक छात्रों ने सर्प को दूध पिलाते हुए देखा था।

बहस आगे बढ़ी - सभी छात्रों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि कीड़े-मकोड़े और मेंढक को तो सांप का भोजन माना लेकिन कुछ

छात्रों का कहना था कि उनको ऐसी जानकारी है कि सांप दूध नहीं पीता है। इस तरह सांप के भोजन पर फिर से चर्चा शुरू हो गई। टोली क्र. 4 के एक छात्र ने बताया कि नागपंचमी के दिन एक बार वह अपनी मौसी के घर गया था उसी दौरान उनके घर एक सपेरा आया। मौसी ने दूध से लगभग तीन चौथाई भरी कटोरी लाकर सपेरे को दे दी। सपेरे ने सर्प का मुंह पकड़कर कटोरी में डाल दिया। कुछ देर बाद जब उसने सांप का मुंह कटोरी से बाहर निकाला तो देखा कि कटोरी में आधा दूध ही बचा था। एक दूसरे विद्यार्थी ने बताया कि हर साल नागपंचमी के दिन हमारे घर में नागदेवता का चित्र दीवार पर बनाकर उसकी पूजा की जाती है। पूजन के बाद एक मिट्टी के दिए में दूध भरकर उसे सांप की बांबी के पास रख देते हैं। नागदेवता पूरा दूध पी जाते हैं और कुछ समय बाद दिया खाली मिलता है। इसी टोली के एक छात्र ने बताया कि उसने सपेरे को सांप के मुंह में एक नली फंसाकर दूध पिलाते हुए देखा है।

इन जानकारियों से यह बात तो प्रमाणिक तौर पर सिद्ध हो रही थी कि सांप को स्वाभाविक ढंग से दूध पीते हुए किसी ने भी नहीं देखा, जबकि सर्प को कीड़े-मकोड़े आदि खाते हुए अनेक छात्रों ने देखा था। साथ ही सांप जैसा कोई अन्य ऐसा जंतु नहीं देखा जो कि दूध पीता हो। सार्थक बहस के बाद इस बात को स्वीकार किया गया कि सांप का स्वाभाविक भोजन दूध नहीं है। इसी चर्चा के दौरान एक छात्र ने बताया कि सांप की जीभ बीच से कटी होती है इसलिए वह किसी भी प्रकार का तरल पदार्थ पी ही नहीं सकता। तरल पदार्थ पीने के मामले में जीभ की ही प्रमुख भूमिका होती है। इसके कटे होने पर सारा तरल बाहर निकल जाएगा।

बहस के अंत में एक टोली के छात्र ने सुझाव दिया कि क्यों न सवालीराम को चिट्ठी लिखकर इस विषय पर जानकारी प्राप्त की जाए। छात्रों ने सवालीराम को पत्र लिखा। कुछ दिनों बाद जब जवाब आया तो उन्हें बहुत खुशी हुई। सवालीराम ने भी उनके निष्कर्षों को सही बताया था एवं यह जानकारी दी थी कि सर्प कीड़े-मकोड़े का भोजन करता है। इसी के द्वारा वह अपनी पानी की आवश्यकता को भी पूरी कर लेता है इसलिए उसे पानी पीने की ज़रूरत नहीं होती।

(राजेन्द्र दुवे, शासकीय माध्यमिक शाला, घाटली, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.)

सीधे-सवाल, टेढ़े–जवाब

● अमिताभ मुखर्जी
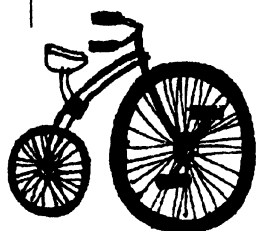
बच्चों ने सवाल पूछे – सोचा था जवाब देना आसान होगा। लेकिन जब लिखने बैठे तो जो कसरत हुई कि हमारे मुगालते दूर हो गए। सवालीराम के सवालों से जूझने का एक अनुभव।

इस पत्रिका के जो पाठक होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (हो.वि.शि.का.) के क्षेत्र में रहते हैं या रह चुके हैं, वे तो सवालीराम से भली भांति परिचित होंगे। औरों की जानकारी के लिए बता दें होशंगाबाद विज्ञान पढ़ने वाले बच्चों के दिमाग में जो ढेरों सवाल उठते हैं उन सबका जवाब कक्षा में तो मिल नहीं सकता। इसलिए एक सवालीराम की कल्पना की गई। बच्चे सवालीराम को अपने प्रश्न लिख सकते हैं। सवालीराम कई बार इन प्रश्नों के जवाब देता है तो कई बार उत्तर खोजने का तरीका इंगित कर देता है। आगे चलकर 'होशंगाबाद विज्ञान' पत्रिका में भी एक प्रश्नोत्तर स्तम्भ के रूप में सवालीराम के जवाब लिखे जाने लगे। बच्चों को खुली दावत दी गई कि वे सवालीराम को अपने सवाल भेजें। हर बच्चे को व्यक्तिगत रूप से जवाब दिया जाएगा और चुने हुए सवाल और जवाब पत्रिका में छपेंगे, यह आश्वासन था। उसके बाद क्या कुछ नहीं हुआ - पहले खतों का प्रवाह, फिर सैलाब; एकलव्य के कुछ

कार्यकत्ताओं के सपनों में भी सवालीराम का आना, जवाब खोजते-खोजते कुछ लोगों के असमय सफेद हुए बाल - कुल मिलाकर यह एक लम्बी कहानी है, जो अब भी चल रही है। आशा है कि 'एकलव्य' के कार्यकर्त्ता कभी इस को विस्तार से लिपिबद्ध करेंगे। फिलहाल मैं सवालीराम से जुड़े हुए कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का ब्यौरा देना चाहता हूँ।

उन दिनों मैं कानपुर स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (I.I.T) में शोधरत् था। 'हार्डी' का पत्र आया, "सवालीराम के नाम बहुत खत आ रहे हैं। अगर हम कुछ खत कानपुर भेज दें तो क्या तुम लोग उनके जवाब लिखकर भेज सकते हो?" इतनी-सी बात! मैं भारत के एक चोटी के शैक्षणिक संस्थान में था। वैज्ञानिकों से घिरा हुआ। होनहार प्रतिभाओं के चमकते चेहरे, अध्ययन और अध्यापन का अनुकूल माहौल। इसमें छठी-सातवीं के बच्चों के सवालों के जवाब देना क्या मुश्किल था!

हमने एक टीम बनाई। इसमें शामिल थे कुछ शोध छात्र-छात्राएं और एम.एस सी. के विद्यार्थी। चूंकि मैं खुद भौतिकी विभाग में था, इसलिए टीम के लगभग सभी सदस्य भी इसी विभाग के थे। जीव विज्ञान के प्रश्नों को लेकर हमें थोड़ी परेशानी हो सकती है, यह हमने अनुमान लगाया था। किन्तु भौतिकी और रसायन के सवालों को पोहा-जलेबी की तरह चबा जाएंगे,
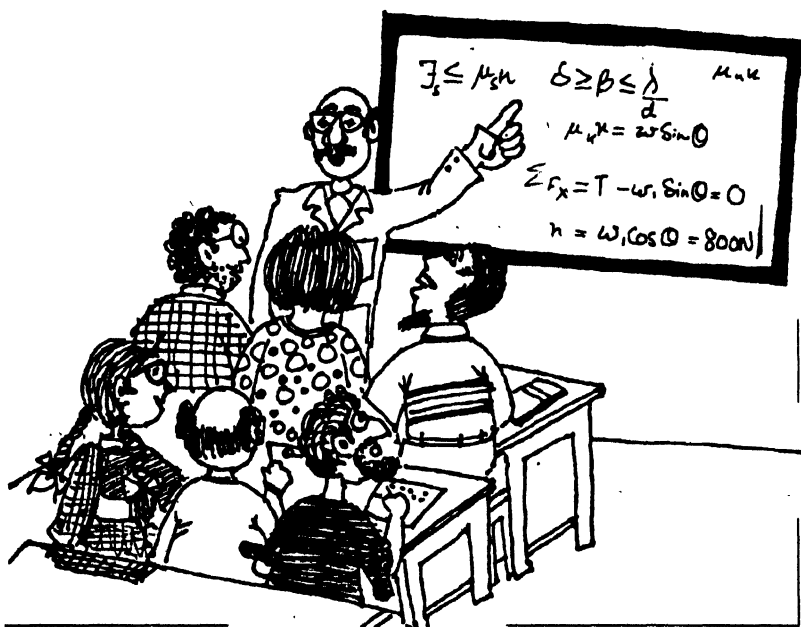
कुछ ऐसा ख्याल था हमारी टीम का। हमने तय किया कि हफ्ते में एक बार सभी मिलेंगे। सवाल बांटकर जवाब लिखे जाएंगे। उन पर साप्ताहिक गोष्ठी में सामूहिक चर्चा होगी। जिसके आधार पर उन्हें अंतिम रूप दिया जाएगा। छोटे सवालों के जवाब सीधे बैठक में ही लिखे जा सकते हैं। तब तक मुझे खतों का एक पुलिंदा मिल चुका था, और मुझे लगने लगा था कि यह काम इतना आसान नहीं होगा।

हमने अपने विषयों को छोटे-छोटे हिस्सों में बांट रखा था। जैसे 'प्रकाश', 'ध्वनि', 'यांत्रिकी' आदि। (Mechanics को हिंदी में यांत्रिकी कहते हैं यह हमारे अधिकांश सदस्यों को पता नहीं था। खैर इस पहलू पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है) पहले पुलिन्दे में बच्चों के जो सवाल मिले वे कुछ ऐसे थे, उदाहरण के लिए:

1. *आकाश का रंग नीला क्यों है?*
2. *किसी चीज़ को पीटने से आवाज़ क्यों होती है?*
3. *साइकिल को पहियों पर खड़ी करते हैं तो वह गिर जाती है, पर जब चलाते हैं तब क्यों नहीं गिरती?*
4. *पृथ्वी गोल क्यों है? (अब इसको किस हिस्से में डालेंगे। और तो और ये बच्चे तो विषय की सीमाओं को भी नहीं मानते)*

कुछ सवाल रसायन के थे? जैसे:

5. *जासौन के फूल पर चूना लगाने से रंग फीका क्यों पड़ जाता है?*

तो कुछ सवाल जीव-विज्ञान के थे:

6. *बाल क्यों गिरते हैं?*
7. *कुत्ता बैठने से पहले गोल-गोल क्यों घूमता है?*

यहाँ तक तो ठीक है पर, अब इस सवाल को भौतिकी का मानें या जीव-विज्ञान का?

8. *जब आदमी मरता है तो उसका शरीर भारी क्यों हो जाता है?*

दूसरी बात यह थी कि अक्सर सवाल विज्ञान के दायरे के बाहर होते थे, मसलन:

9. *आत्मा है या नहीं?*

और इस 'सवाल' को किस नाम से पुकारेंगे:

10. *सवालीराम जी क्या आप हमें अपना फोटो भेजेंगे?*

तीसरी बात यह थी कि बच्चे विज्ञान की सुलझी हुई भाषा और शैली से अपरिचित थे। 'पृथ्वी गोल क्यों है?' इस प्रश्न का मकसद क्या है - 'पृथ्वी गोल कैसे बनी?' या 'हमें कैसे पता चलता है कि पृथ्वी गोल है?'

बहरहाल, हमारी बैठकें शुरू हुईं। शोध-छात्रों में इस नए और अनोखे काम के लिए काफ़ी उत्साह था। जवाब लिखने में किस तरह की समस्याएं आएंगी यह हमारी टीम ने जल्दी ही पकड़ लिया। उदाहरण स्वरूप पहले प्रश्न, 'आकाश का रंग नीला क्यों है', को लेकर कुछ इस तरह की बातचीत हुई।

- "इसका कारण तो रैले स्केटरिंग है, पर यह किस तरह से लिखा जाए ?"
- "स्कटरिंग को हिन्दी में क्या कहते हैं?"
- "बिखरना, प्रकाश का बिखरना।"
- "इसमें असली बात तो यह है कि छोटी तरंग दैर्घ्य की तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं।"
- "वेवलेंथ की हिन्दी है तरंग-दैर्घ्य, पर क्या हम इस पारिभाषिक शब्द का उपयोग कर सकते हैं?"
- "अरे नहीं, सातवीं के बच्चे ने सवाल पूछा है।"
- "यूँ कह सकते हैं कि हवा के अणुओं से टकराकर प्रकाश बिखर जाता है। अब सूर्य के प्रकाश में लाल, पीली, हरी, नीली, बैंगनी, सभी रंग की किरणें होती हैं। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रकाश एक तरह की तरंग है। अलग-अलग रंग की किरणों की तरंगों की लम्बाई अलग-अलग होती है। लाल तरंग लम्बी होती है और नीली तरंग छोटी।"
- "हाँ, छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं और बड़ी तरंगें कम। यानी लाल रंग कम बिखरता है और नीला ज़्यादा। इन बिखरी हुई किरणों के कारण आकाश नीला लगता है।" (यह बातचीत काफी लम्बी रही, मैंने सिर्फ सार दिया है)

अब बात बन रही थी। एक आम सहमति बन चली थी कि उत्तर कुछ ऐसा ही होना चाहिए। एक शोध छात्र 'क' ने कहा कि वह इस उत्तर को लिख कर अगली बैठक में ले आएगा। पर अगली बैठक में एक नया और अनापेक्षित सवाल खड़ा हो गया। 'क' ने कहा, "मैंने जवाब तो लगभग लिख लिया है। लेकिन अगर बच्चा पूछे आकाश बैंगनी क्यों नहीं है तो इसका क्या उत्तर होगा?" ऐं! लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सच, यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था! छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं, इसमें कोई शक नहीं। रैले ने सौ साल पहले यह बात सिद्ध की थी।*

दिखाई देने वाले प्रकाश में बैंगनी तरंगें सबसे छोटी होती हैं। तो आकाश को बैंगनी होना चाहिए था! किसी ने कहा "कभी-कभी आकाश बैंगनी-सा भी लगता है।" पर यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं था। इसका मतलब हमारी समझ में कहीं कमी थी। किसी ने लाइब्रेरी में रैले के पुराने शोधपत्र ढूँढ निकाले, पर वहाँ भी जबाब नहीं मिला।

अन्त में कई किताबें छानकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसमें आँख की संरचना की भी भूमिका है। हमारी आँखें बैंगनी किरणों के प्रति उतनी संवदेनशील नहीं हैं जितनी कि नीली के लिए हैं। बैंगनी किरणें ज़्यादा बिखरती हैं। पर यदि 'बिखरने की मात्रा और आँख की संवेदनशीलता का गुणनफल' निकाला जाए तो यह, नीली किरणों के लिए सबसे

* एक गणित के सूत्र के रूप में रैले ने कहा था कि बिखरने की मात्रा तरंग लम्बाई के चौथे घात के विपरीत अनुपात में होती है:

$$\text{बिखरना} \sim 1/(\text{तरंग लम्बाई})^4$$
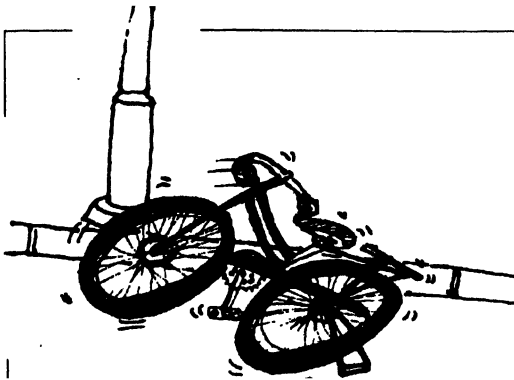
"एक सवाल है - अगर साइकिल पर कोई सवार न हो और उसे केवल धक्के से चला दिया जाए तो वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। लेकिन अगर सिर्फ एक पाहिए को लुढ़का दें तो वह काफी दूर तक जाता है। ऐसा क्यों?"

"हाँ, कोणीय वेग तो दोनो में एक-सा ही है।"

"लगता है यह प्रश्न साइकिल की बनावट से जुड़ा हुआ है। दो पहिए, रॉड, हैंडिल... सोचना पड़ेगा।"

एक अन्य शोध छात्र 'अ' ने कहा कि वह इस बात की तह तक जाना चाहता है। यान्त्रिकी की किताबों में स्पष्ट जवाब नहीं मिला। उसने विज्ञान के विश्व कोश टटोले। फिर आगे की एक बैठक में 'अ' ने हमें अपनी खोजों के बारे में बताया। साइकिल की स्थिरता कई चीज़ों पर

ज़्यादा होगा। इस तरह एक सीधे सवाल का जवाब टेढ़ा निकला। 11वीं-12वीं की किताबों में इस सवाल का जो जवाब दिया जाता है व अधूरा है। और मज़ेदार बात यह है कि अब भी कहा नहीं जा सकता कि जवाब पूरा है। हमारी चर्चाओं में ऐसे सवाल भी उठाए गए –

"कभी-कभी (सूर्योदय और सूर्यास्त के समय) आकाश का कुछ अंश लाल लगता है। उस समय बादल हों तो वे पीले या नारंगी रंग के हो जाते हैं लेकिन हरा रंग कभी नहीं दिखाई देता। क्यों?"

साइकिल वाले सवाल में भी कुछ ऐसा ही हुआः

"यह तो 'एंग्युलर मोमेंटम' यानी कोणीय वेग का कमाल है।"

"सरल भाषा में कह सकते हैं कि कोई भी चीज़ जब घूमती है तब उसकी दिशा बदलना बहुत मुश्किल होता है।"

"हाँ, जैसे घूमता हुआ लट्टू।"
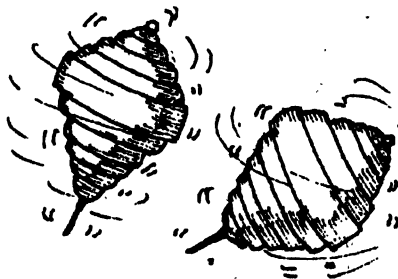
निर्भर करती है, जैसे पहियों के व्यासों का अनुपात, भारकेन्द्र कहां है, फ्रोर्क (चिमटा) की बनावट आदि।

शुरू-शुरू में कुछ साइकिलें ऐसी होती थीं। इनमें पहियों के व्यासों का अनुपात बहुत महत्व रखता था।
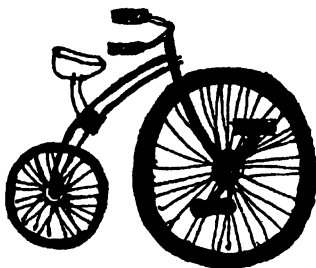
बाद में पाया गया कि अगर हम चाहते हैं कि साइकिल डोले भी कम और उसे चलाने में दम भी कम-से-कम लगे, तो पहियों को बराबर बनाना बेहतर है। आधुनिक साइकिलों में पहिए बराबर ही होते हैं। दूसरा सवाल है भारकेन्द्र का। यह तो एक आम अनुभव है कि जिस वस्तु का भारकेन्द्र ऊँचा होता है वह हल्के-से धक्के से हिल जाती है।

आधुनिक साइकिलों में विभिन्न मॉडलों में सीट और रॉड की बनावट अलग-अलग होती है। ज़ाहिर है कि जिस मॉडल का भारकेन्द्र ज़्यादा नीचे होगा वह ज़्यादा स्थिर होगा।

ये बातें तो हमारी टीम के लिए नई नहीं थीं। पर 'अ' ने एक और बात बताई जिसके बारे में लोगों ने कभी सोचा नहीं था। साइकिल के फ्रोर्क अर्थात् अगले हिस्से की बनावट का उसकी स्थिरता पर बहुत असर पड़ता है। इसको लेकर कई प्रयोग हुए हैं। वस्तुतः फोर्क बनाते समय स्थिरता और चलाने में आसानी, इन दोनों में से एक को कम करना ही पड़ता है। अगर फोर्क का आकार चित्र 'क' की तरह हो, तो साइकिल का संतुलन बहुत बढ़िया होगा, पर चालक के लिए उसे चलाना (विशेषकर मुड़ना) बहुत मुश्किल होगा। इसके विपरीत चित्र 'ख' की तरह बनी साइकिल को मोड़ना बहुत आसान होता है, पर वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। आजकल ज़्यादातर साइकिलों का फोर्क इन दोनों के बीचों-बीच, चित्र 'ग' की तरह होता है।

लेकिन 'अ' की खोजों से सबसे बड़ी बात जो सामने आई वह है - सवार की भूमिका। बात सीधी-सी है। जब साइकिल थोड़ी टेढ़ी हो जाती है, तब सवार अपने भारकेन्द्र को ज़रा-सा खिसका देता है, जिससे झुकाव की विपरीत दिशा में एक बल काम करता है। साथ ही दिशा को सुधारने के लिए वह हैंडिल का उपयोग करता है। इससे साइकिल फिर सीधी हो जाती है। यह काम सवार अनजाने में ही लगातार करता रहता है। यही कारण है कि जहाँ धक्के से चलाई हुई बिना सवार

की साइकिल आधा मीटर भी सीधी नहीं चलती, सवार समेत साइकिल चलती रहती है। यानी "साइकिल कोणीय वेग की वजह से नहीं गिरती" कहना पूरी तौर पर सही नहीं है!

कई और सवालों के लिऐ भी हमें इसी तरह से लाइब्रेरी की किताबें छाननी पड़ीं। अक्सर स्कूली किताबों में जो 'मानक' जवाब मिलते हैं वे अधूरे होते हैं या फिर 'सरलीकरण' के चक्कर में असली मुद्दों को छूते ही नहीं। यह भी स्पष्ट हुआ कि विशेषज्ञों की समझ में भी अक्सर खामियाँ रह जाती हैं।

कुछ और, खासकर 'जीव-विज्ञान' के सवालों में, दूसरी तरह की समस्याएं आईं। कुत्ते वाले सवाल (प्रश्न6) को ही लीजिए। क्या सचमुच कुत्ते ऐसा करते हैं? हम में से किसी ने नज़दीक से कुत्तों का अवलोकन नहीं किया था - कम-से-कम उनके बैठने से पहले की क्रिया का तो बिल्कुल नहीं। इसी तरह का एक और सवाल था कि टिटहरी पेड़ पर क्यों नहीं बैठती?

टिटहरी होती क्या है? एक पक्षी, यह तो पता था, लेकिन टीम में किसी को उसकी पहचान नहीं थी। वह सचमुच पेड़ पर बैठती है या नहीं, यह जानकारी तो दूर की बात है। इस तरह के सवालों में हमने यह पाया कि बच्चों ने काफी बारीकी से अवलोकन किया है, और जवाब देने के लिए हमारे पास समझ तो छोड़िए, तथ्य ही नहीं हैं।

कुछ सवाल आपस में मिलते-जुलते थे। इनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी सवाल थे जैसे कि दाँत क्यों सड़ने लगते हैं? इससे मिलते-जुलते सवाल कई बच्चों ने पूछे थे। मौसम को लेकर पूछे गए सवाल भी इस श्रेणी में आते हैं जैसे कि बादल क्या हैं? या बिजली क्यों गिरती है? हमने तय किया कि 'बादल-बिजली-बरखा' सम्बन्धी एक लम्बा लेख लिखेंगे, जिसमें ये और इन से मिलते-जुलते प्रश्नों के उत्तर शामिल होंगे। एक एम.एस सी. की छात्रा ने काफी मेहनत करके लेख

लिखा - अंग्रेज़ी में। अब इसका हिन्दी अनुवाद करना था। लेकिन हाय! बैठक में आते समय उस लड़की की साइकिल के कैरियर से वह लेख कहीं गिर गया। (शायद उसका भारकेन्द्र कुछ ऊँचा था!) और बहुत ढूंढने पर भी नहीं मिला।

इसके बाद थोड़े दिनों में हमारी टीम बिखर गई - एम.एस सी. के छात्र पास होकर चले गए। और लोग भी अपने कामों में कुछ ज़्यादा व्यस्त हो गए। इस तरह यह दौर यहीं समाप्त हो गया।

आज पीछे देखें तो यह अनुभव कैसा लगता है? जो लोग इस काम से जुड़े थे, उनकी इस बात पर सहमति है "पता नहीं हम बच्चों को कितना समझा पाए पर इस अनुभव से हमने बहुत कुछ सीखा और समझा है।" कुछ सबक जो हमने सीखे वे इस प्रकार हैं:

- हमने जाना कि प्रायः हमारी समझ अधूरी होती है। अक्सर पारिभाषिक शब्द समझ का स्थान ले लेते हैं।
- दूसरे को समझा पाना, वह भी सरल भाषा में, यही समझ की परख है।
- विषयों की सीमाएँ कृत्रिम हैं। इसलिए बड़ों के सवाल अक्सर सीमित होते हैं, जबकि बच्चों के सीधे सवाल हमें धराशाई कर देते हैं।
- बच्चे प्रकृति का अवलोकन करते हैं, अक्सर काफी बारीकी से।
- बच्चे जिज्ञासा और खोज की प्रवृत्ति को स्वाभाविक भावनाओं से अलग नहीं करते। तभी प्रश्नों के साथ-साथ सवालीराम को अपना प्यार भेजना नहीं भूलते।

यह तो स्पष्ट है कि सवालीराम को लिखे हुए बच्चों के खत हमें बच्चों के सामाजिक परिवेश, मनोवृत्ति व सोचने के ढंग के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। इनका गहन रूप से अध्ययन किया जाए तो स्कूली पाठ्यक्रम को सुधारने में काफी मदद मिल सकती है। इस लेख में मैंने केवल कुछ अनुभवों को लिपिबद्ध किया है। आशा है कि आगे भी इस तरह के विश्लेषण का प्रयास किया जाएगा।

वैसे क्या आप भी सीधे सवालों से जूझने की इस अनोखी प्रक्रिया को आज़माना चाहेंगे?!

(अमिताभ मुखर्जी - भौतिकी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

●●●
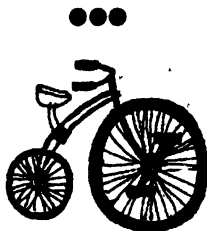
आस-पास बिखरे हैं सूचक

• पुरुषोत्तम खाडिकर

अम्ल और क्षार पहचानने के लिए लिटमस कागज़, फिनोफ्थलीन, मिथाइल ऑरेंज जैसे सूचक ही आवश्यक हैं क्या? हमारे आसपास जो इतने सारे सूचक बिखरे रहते हैं उनमें से कुछ इस्तेमाल करते हुए भी अम्ल-क्षार पहचानने की कोशिश की जा सकती है।

इस प्रयोग के लिए ज़रूरी चीज़ें

सफेद कागज़, लाल जासौन का फूल, पानी, इमली, कपड़े धोने का सोडा, खाने का सोडा, नमक, शक्कर, नींबू, चूना, आंवला और डिटर्जेंट पाउडर।

विधि : सफेद कागज़ के टुकड़े पर लाल जासौन की पंखुड़ी घिसिए ताकि कागज़ रंगीन बन जाए। ध्यान रहे कि कागज़ का हर हिस्सा समान रूप से रंगा जाए। इस कागज़ को धूप में सुखाकर उसके दो बराबर टुकड़े कीजिए। एक टुकड़े पर नींबू का रस मलिए। टुकड़े का रंग बदलता है। इस टुकड़े को भी सुखाइए। दूसरे को वैसे ही रहने दीजिए - जासौन के रंग में रंगा। अब आपके पास दो रंगों के टुकड़े हो गए। इनकी सात-आठ पट्टियां काट लीजिए।

अब साबुन, सोडा आदि वस्तुओं के अलग-अलग घोल पानी में बनाइए - इमली, आंवला जैसी वस्तुओं के घोल बनाने के लिए इनके टुकड़े कर पानी में कुछ समय भिगो कर रखना होगा। हर घोल के लिए साफ पानी अलग से लीजिए। इन घोलों को दोनों रंगों की पट्टियों पर लगाना है, और पट्टियों के रंग पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है यह देखना है। अपने इस निरीक्षण को इस तरह की तालिका में दर्ज़ कीजिए।

घोल	नीली पट्टी पर असर	लाल पट्टी पर असर
इमली		
साबुन		

इस प्रयोग से क्या पता चला?

इसे जासौन के फूल के अलावा हल्दी से भी किया जा सकता है। जब हल्दी इस्तेमाल करें तो पहले जैसे ही प्रक्रिया करनी होगी - हल्दी के घोल से कागज़ रंगकर उसे सुखाकर दो टुकड़ों में काट लें। एक टुकड़े को साबुन (न कि डिटर्जेन्ट) के घोल से गीला कर लें। बाकी का काम बिल्कुल ऊपर जैसे ही करना है। इसी तरह से आप विद्यार्थियों के साथ मिलकर ढूंढने की कोशिश कर सकते हैं कि और कौन-कौन-सी ऐसी चीज़ें हैं अपने आस-पास जिन्हें इस तरह सूचक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

डॉ. पुरुषोत्तम खाडिकर, नागपुर

अमोनिया से बना एक फव्वारा!

उड़ती गंध ने दूर से ही बता दिया कि बन रही है कहीं अमोनिया, ज़रा देखें कैसे बनाया गया इससे एक फव्वारा।
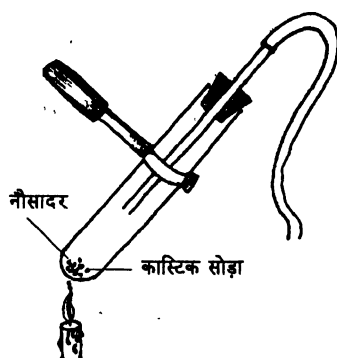
जब भी विद्यार्थियों को गैसें पढ़ाते हैं तो अमोनिया का ज़िक्र ज़रूर आता ही है। क्योंकि एक तो उसे बनाना आसान है और दूसरा, गुणधर्मों की वजह से उसे पहचानना भी बहुत-ही आसान होता है कि कौन-सी गैस बन रही है। यहां पर अमोनिया के गुणधर्मों का इस्तेमाल करते हुए एक जादुई-सा दिखने वाला फव्वारा बनाएंगे। उसके लिए सबसे पहले अमोनिया बना लें।

एक उफननली में लगभग आधा चम्मच नौसादर (अमोनियम क्लोराईड) लो और उसमें कॉस्टिक सोडा (सोडियम हाईड्रॉक्साइड) की तीन-चार टिकिया डालो। फिर चित्र में दिखाए मुताबिक उफननली को गर्म करो। पास जाकर सूंघने की कोशिश करने की ज़रूरत नहीं होती, दूर से ही उसकी तेज़ गंध से समझ में आ जाता है कि अमोनिया बनने लगी है।

सामग्री:

1. ग्लूकोज़ चढ़ाने वाली कांच की बोतल : किसी भी अस्पताल से ऐसी खाली बोतल मिल जाएगी, उसके साथ ही दो छेद वाला काले रंग का कॉर्क भी होता है।
2. बीकर : 250 मि.ली. का कांच या प्लास्टिक का बीकर।
3. इंजेक्शन की सिरींज : आजकल प्लास्टिक की डिस्पोज़ेबल सिरींज
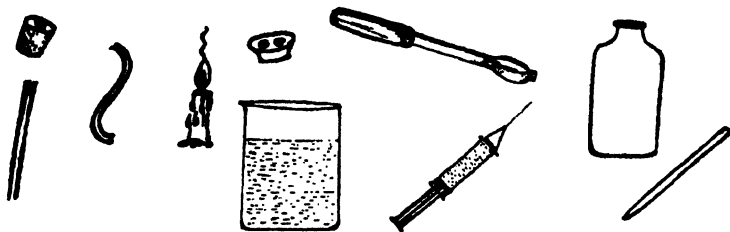
का काफी प्रचलन हो गया है। इसलिए किसी अस्पताल से मिल सकती है या फिर दवाई की दुकान से 3-4 रुपए में खरीद लें।

4. फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल : अगर प्रयोगशाला में फिनोफ्थलीन उपलब्ध न हो तो दवाई की दुकान से परगोलेक्स या वेक्युलेक्स जैसी कोई जुलाब की गोली खरीद सकते हैं। जिसमें सिर्फ फिनोफ्थलीन ही होती है। एक गोली 25 या 50 पैसे में मिल जाएगी। एक गोली पीसकर आधे लीटर पानी में घोलने पर फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल तैयार हो जाएगा।
5. जेट नली : कांच की नली जो एक तरफ से संकरी हो।
6. रबर की नली
7. उफननली
8. कांच की नली
9. एक छेदी रबर कार्क
10. कास्टिक सोडा (सोडियम हाईड्रॉक्साइड)
11. नौसादर (अमोनियम क्लोराईड)

अब बनाते हैं फव्वारा

1. एक सूखी उफननली में ऊपर बताए गए रसायन डालकर अमोनिया तैयार करनी होगी। उसे एक सूखी ग्लूकोज़ की बोतल में इकट्ठी कर लीजिए। दूसरी नली इसलिए डाली गई है ताकि ऊपर की हवा को बाहर निकलने का मौका मिले।
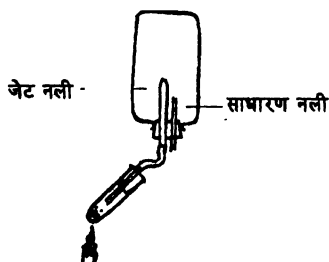
2. जब बोतल में अमोनिया गैस इकट्ठी हो रही है उसी समय आप अन्य तैयारियां कर लें। जिससे बाद में मदद मिलेगी। एक तो इंजेक्शन की सिरींज में पानी भर कर रख लें। और दूसरा, एक बीकर में फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल तैयार करके भर लें।

3. जैसे ही समझ में आए कि ग्लूकोज़ की बोतल अमोनिया से पूरी तरह भर गई है, यानी कि अमोनिया की तेज़ गंध कक्षा में फैलने लगे, तब कांच की खुली नली को निकालकर उसकी जगह उसी छेद में पानी से भरी हुई इंजेक्शन की सिरींज फंसा दीजिए। यह ध्यान रखिए कि ऐसा करते वक्त पानी की एक बूंद भी बोतल के अंदर नहीं जानी चाहिए।
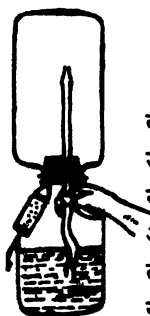
4. अब रबर की नली को मोड़कर दबाकर उसे उफननली में लगी कांच की नली में से निकाल लीजिए और उसी तरह पकड़े हुए, बंद रखते हुए रबर की नली को फिनोफ्थलीन के रंगहीन सूचक घोल से भरे बीकर में ऊपर तक डुबा दें।

5. बस अब आखिरी कदम है। इंजेक्शन की सिरींज का पिस्टन अचानक दबाकर थोड़ा-सा पानी बोतल में फेंकिए और साथ-ही फिनोफ्थलीन के रंगहीन सूचक घोल में डूबी रबर की नली खुली छोड़ दीजिए। जेट नली में से घुसता हुआ घोल ग्लूकोज़ की बोतल में तेज़ी-से फव्वारे की तरह बनकर फैलेगा और साथ ही रंग बदलकर एकदम लाल भी हो जाएगा।
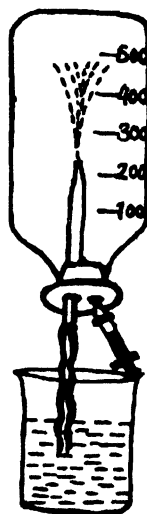
ऐसा क्यों हुआ?

1. अमोनिया पानी में अति घुलनशील है इसलिए जैसे ही इंजेक्शन की सिरींज से बोतल में थोड़ा-सा पानी

डालते हैं तो खूब-सारी अमोनिया उसमें तेज़ी से घुलने लगती है। जिससे बोतल में हवा का दबाव कम होने लगता है और जेट नली के ज़रिए फिनोफ्थेलीन का रंगहीन सूचक घोल ऊपर को खिंचता चला आता है।

2. अमोनिया क्षारीय है इसलिए फिनोफ्थेलीन के रंगहीन घोल को रंगीन बना देती है। इसलिए जेट नली में से ऊपर उठता हुआ रंगहीन घोल अचानक रंगीन फव्वारे में तब्दील हो जाता है।

3. क्योंकि अमोनिया हवा से हल्की होती है (यानी उसका घनत्व कम होता है) इसलिए ग्लूकोज़ बोतल को उल्टी रखकर अमोनिया को उसमें इकट्ठा किया गया है।

4. और उसकी तेज़ गंध से ही तो पता चला कि अमोनिया बन रही है।

अगर आप चाहते हैं कि फव्वारा अच्छे से चले :

1. इस प्रयोग में लिए जाने वाले सब उपकरण और रसायन एकदम सूखे होने चाहिए - नहीं तो अमोनिया पहले से ही पानी में घुलने लगेगी और इकट्ठी नहीं होगी।

2. जहां तक संभव हो हर जोड़ को हवाचुस्त रखने की कोशिश कीजिए ताकि अमोनिया ठीक-से इकट्ठी हो। खास तौर पर अंतिम हिस्से में ताकि बोतल के अंदर दबाव कम होने पर फिनोफ्थेलीन के रंगहीन सूचक घोल के बजाए कहीं हवा अंदर न घुस जाए।

3. जेट नली का सिरा जितना बारीक होगा - फव्वारा उतनी ही ज़्यादा देर तक चलेगा और सुंदर दिखेगा।

(प्रशांत साहू, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा संकलित)

क्या कहता है यह चित्र?

इस चित्र से हम चीटियों के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। क्या आप इस चित्र का विश्लेषण कर सकते हैं, संदर्भ द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद के पते पर अपना विश्लेषण भेजें। सही विश्लेषण को हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

कहां-कहां नहीं है बल

* * *

बोलचाल में तो छुटपन से ही, पर तीसरी-चौथी तक आते-आते विज्ञान में भी बल और भार की बात आने लगती है। और वैसे भी 'बल' आम बोलचाल का शब्द है, इसलिए सब मान लेते हैं कि बल की अवधारणा तो सबको स्पष्ट होगी ही। पर आप कॉलेज की पढ़ाई कर रहे किसी छात्र से भी पूछकर देख लीजिए, कि ऊपर की ओर फेंकी गई गेंद पर कब, किस तरफ और कौन-सा बल लग रहा है। एकदम से समझ में आ जाएगा कि कैसे-कैसे भ्रम हैं बल की अवधारणा को लेकर ....

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आमतौर पर विज्ञान की ऐसी अवधारणाओं पर जो अध्याय लिखे जाते हैं, उनमें परिभाषाओं और गणितीय सूत्रों के अलावा कुछ दिखता ही नहीं है, उस विषय की समझ बनाने या बढ़ाने की कोई कोशिश नज़र नहीं आती। विद्यार्थियों को बल की अवधारणा समझाने के लिए **अनिता रामपाल** *का एक वैकल्पिक प्रयास यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।*

गेंद, गोल से बहुत दूर थी। छज्जू ने खूब ज़ोर से लात मारी और गेंद गोली की तरह उड़ती हुई गोल में घुस गई। सभी हैरान थे। छज्जू लगता तो पतलू-सा है पर इतना बल लगा सकता है, यह मालूम ही नहीं था।

बल, बलवान - ये शब्द तो तुम शायद रोज़ इस्तेमाल करते हो। खेल में, लड़ाई या कुश्ती में, मेहनत-मज़दूरी में, ये शब्द आम सुनने में आते हैं। पर विज्ञान में "बल" शब्द का इस्तेमाल अलग ढंग से होता है। उदाहरण के लिए, अगर एक को उठाना हो तो तुम शायद कहोगे कि "अरे, यह तो हल्की-सी है, इसको उठाने में कोई बल थोड़े ही लगा।" पर वैज्ञानिक कहेंगे, "नहीं साहब - किताब क्या पेंसिल उठाने में भी बल लगता है" या फिर अगर तुम आराम से दीवार से टिककर खड़े हो, कोई हरकत नहीं कर रहे तब भी बल लग रहा है। है न अजीब-सी बात। तुम कहोगे, "नहीं जनाब - हम तो बिलकुल आराम से खड़े हैं। बल-वल का सवाल ही
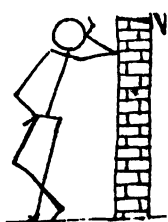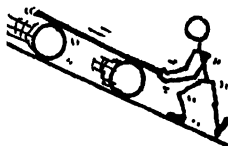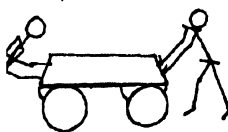
नहीं उठता।" पर यही नहीं, वैज्ञानिक तो इससे भी और अटपटी बात कहेंगे कि "दीवार भी तुम पर बल लगा रही है।" बस, यह सुनकर तो शायद तुम भाग निकलने की तैयारी में होगे। यह सोचते हुए कि भई, इन वैज्ञानिकों का शायद भेजा घूम गया है, इनकी बल-वल की बात अपने तो पल्ले नहीं पड़ती। पर रुको, यूं मैदान छोड़कर मत भागो। अभी साफ किए देते हैं यह उलझन। यह अध्याय पढ़ तो लो, फिर देखो तुम भी बल के मामले में कैसे महारथी बन जाते हो। सबसे पहले तो यह देख लें कि बल के बारे में कौन-सी बातें हम पहले से जानते हैं।

एक खाली ठेले को धक्का दें, यानी उस पर बल लगाएं, तो वह चलने लगता है।

जिस दिशा में बल लगाएं, ठेला उसी दिशा में चलता है। उस पर कहीं एक तीर बनाकर उस बल की दिशा दिखाते हैं।

अगर दो लोग आमने-सामने से ठेले पर बराबर बल लगाएं तो ठेला चलता नहीं, वहीं खड़ा रहता है।

ढलान पर लुढ़कते हुए ठेले को रोकने के लिए उस पर उल्टी दिशा में बल लगाना पड़ता है।

अब नीचे दिए हुए प्रश्नों का उत्तर
तुम्हें अपनी-अपनी समझ से देना है।

उत्तर सही है या गलत इससे हमें मतलब नहीं। देखना तो यह है कि कितनी तरह के उत्तर सामने आते हैं। इन्हीं के आधार पर आगे का सिलसिला चलेगा।
नीचे दिखाई चीज़ों पर क्या कोई बल लग रहे हैं?

सोचकर बताओ कि वस्तु पर कोई बल लग रहा है या नहीं? और अगर हाँ तो किस दिशा में बल लग रहा है?
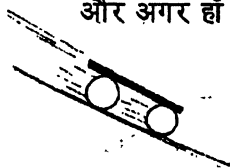
1. ढलान पर से लुढ़कता ठेला

2. धक्का देकर छोड़ देने के बाद, धीरे होता हुआ ठेला
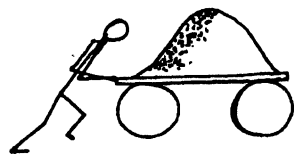
3. धक्का देने पर भी, खड़ा हुआ ठेला
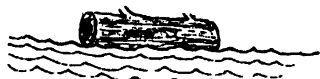
4. पानी पर तैरता पेड़ का तना
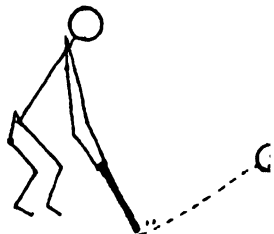
5. ज़मीन की ओर गिरती हुई गेंद

6. डंडे से उछाली गई गेंद

अब तक काफी सर खुजा लिया होगा तुमने। बहुत सोच विचार कर लिया, प्रश्नों के उत्तर देते-देते। चलो अब एक ऐसा प्रयोग करते हैं, जिससे गैलिलियो नाम के वैज्ञानिक ने बहुत पहले बल के एक रहस्य को समझा था।

प्रयोग-1

एक लकड़ी का पटिया लेकर कक्षा में उसे टाटपट्टी या दरी पर रख दो। उसके नीचे एक तरफ किताबें रखो जिससे पटिया तिरछा हो जाए। अब ऊपर की तरफ उठी हुई सतह पर कहीं एक जगह निशान लगाकर कंचा वहां रखकर छोड़ दो। देखो कंचा कितनी दूर जाता है?
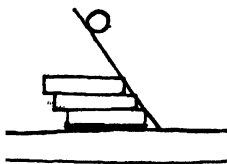
दूसरी बार, लकड़ी के पटिए को फर्श पर उसी तरह रखो और उसी जगह से कंचा छोड़कर देखो। इस बार कंचा लुढ़ककर कितनी दूर गया?

तीसरी बार, पटिए को एक बड़े से कांच के टुकड़े पर रखकर यही प्रयोग दोहराओ।
सतह बदल देने से कंचा अधिक दूरी तक क्यों जाता है?

गैलिलियो का ख्याली प्रयोग

गैलिलियो

बल की कहानी बहुत ही पुरानी है। भौतिकी में तो शायद सबसे पुराना विषय है, जिस पर हज़ारों साल पहले से लोगों ने सोच-विचार किया है। तीर हवा में कैसे चलता रहता है, लुढ़कता पत्थर क्यों रुक जाता है, फल नीचे को ही क्यों गिरता है, धुआँ ऊपर को ही क्यों जाता है, हम उड़ क्यों नहीं सकते?

ऐसे कई प्रश्नों पर लोग गौर तो करते, पर बहुत सटीक उत्तर न मिलते। इन्हीं कुछ प्रश्नों में उलझा हुआ था एक वैज्ञानिक गैलिलियो। कई प्रयोगों के दौरान उसने देखा कि किसी कंचे को ढलान से लुढ़काओ तो वह कुछ दूर जाकर रुक जाता है। उसने सोचना शुरू किया कि अगर कंचे को खूब दूर तक लुढ़काना हो तो क्या किया जाए।

प्रयोग करते-करते उसे पता चल ही गया कि अगर ज़मीन की सतह खुरदुरी हो तो कंचा बहुत दूर नहीं जाता।

गैलिलियो ने सतह को थोड़ा चिकना करके देखा और पाया कि कंचा कुछ और दूरी तक गया। फिर सतह को और अधिक चिकना किया तो कंचा और भी दूर जाकर रुका। इस बात से गैलिलियो ने यह नतीजा निकाला कि सतह का खुरदुरापन ही कंचे की गति में रुकावट डालता है। उसने सोचा, यदि कोई ऐसी काल्पनिक सतह हो जो बिलकुल ही चिकनी हो, तो वह कंचे पर कोई रुकावट नहीं डालेगी। ऐसी सतह तो वास्तव में काल्पनिक ही थी, क्योंकि असली सतह को आखिर कितना चिकना बना सकता था वह। पर एक आदर्श चिकनी सतह का न मिल पाना उसके लिए कोई रुकावट नहीं था। उसने ख्यालों में ही अपना प्रयोग पूरा कर लिया - और मन ही मन उसने भौतिकी का एक मुश्किल रहस्य खोज लिया। ज़रा सुनें

उसने अपने ख्याली प्रयोग से क्या निष्कर्ष निकाला।

उसने कहा कि कंचे पर अगर सतह का या हवा का यानी कोई बाहरी असर न हो, तो कंचा हमेशा चलता रहेगा, रुकेगा नहीं। उफ! कैसी अजीब-सी बात है यह! शायद तब भी लोगों को अजीब लगी होगी, जैसे आज हमें लग रही है। भला किसने देखा है ऐसे होते हुए कि कोई भी चीज़ चलती ही जा रही है, कभी रुकती ही नहीं।

इसी बात को न्यूटन ने पकड़ लिया। उसने कहा कि लुढ़कता हुआ कंचा इसलिए रुक जाता है क्योंकि न दिखने वाला एक बल उसे रोक लेता है। और सतह के साथ रगड़ने वाला यह बल कंचे पर उल्टी दिशा में लगता है। जैसे-जैसे कंचा सतह पर आगे बढ़ता है, यह 'रगड़न' बल एक छुपे हुए हाथ की तरह उसे रोकता है। आखिर में कंचा बेचारा रुक ही जाता है। **पर यदि रोकने वाला कोई बल ही न हो, तो हर चलती हुई वस्तु चलती ही जाएगी, रुकेगी नहीं।** वाकई, यह बात पचानी कुछ मुश्किल लगती है। इसलिए क्योंकि हमने ऐसा होते हुए कहीं भी देखा नहीं है। खास प्रयोग करें तो ज़रूर देख सकते हैं। पर आम ज़िन्दगी में देखने को नहीं मिलता, क्योंकि कई ऐसे बदमाश बल हैं जो छुपे-छुपे काम करते हैं और चलती हुई वस्तुओं को रोकते रहते हैं। पर हम समझ बैठते हैं कि वस्तु अपने आप ही रुक गई। चलो, आगे इन्हीं छुपे रुस्तमों को पहचानना सीखें।

अपनी समझ फिर परखें-
छुपे हुए बल को ढूंढ निकालें:

हम ठेले पर बल लगाते रहें तो ठेला चलने लगता है, और धीरे-धीरे उसकी गति तेज़ होने लगती है।
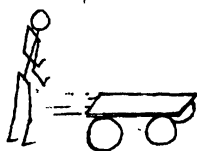
धक्का या बल लगाना छोड़ दें तो क्या होता है? ठेले की गति कम होती जाती है और फिर कुछ दूर जाने के बाद वह रुक जाता है।

हमने तो बल लगाना छोड़ दिया। पर ठेले पर एक विपरीत

बल अब भी है। हां, वही, सतह का 'रगड़न' बल, जो उसकी गति रोक रहा है।

यह बल हमें दिखता तो नहीं, पर इसके असर को हम देख पाते हैं। ये 'रगड़न' मियां तो पहले से ही काम कर रहे थे, लेकिन हमारे बल के सामने ये कमज़ोर पड़ रहे थे।

कुछ छुपे रुस्तम, हैं तो ये भी रगड़न?

एक चलता हुआ ठेला दीवार से टकराकर रुक जाता है। ठेले की गति रोकने के लिए बल किसने लगाया? जी हां, ठीक समझे, दीवार ने ही ठेले पर बल लगाया। बात शायद अटपटी लगे, पर है तो सच। दीवार अगर बल न लगाती तो ठेला चलता ही जाता। सोचो, अगर ठेले के रास्ते में एक कागज़ की दीवार आती तो वह तो ज़रा भी बल नहीं लगा पाती। उसकी क्या हिम्मत कि वह ठेले को रोक पाए। तो बस, ठेला उसे यूं हटाकर निकल जाता।
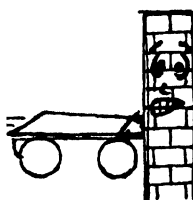
जब भी कोई चलती हुई वस्तु रुक जाती है, या उसकी गति धीमी हो जाती है, तो उस पर लग रहे बल को हमें ढूंढ निकालना होगा।

प्रयोग 2: बल ढूंढो

एक गेंद को कुछ ऊंचाई पर पकड़ो। फिर आराम से, बिना बल लगाए, गेंद को हाथ से छोड़ दो। गेंद नीचे गिरती है। सोचो, भला कौन-सा बल गेंद को नीचे की ओर दौड़ा रहा है? उस बड़े-से छुपे रुस्तम को क्या तुम पहचान पाए? तुमने तो नीचे की तरफ बल नहीं लगाया, फिर किसने लगाया? क्या गिरती हुई गेंद की गति में कुछ अंतर आता हुआ दिखता है? यदि ठीक से न देख पाओ, चूंकि पलक झपकने पर गेंद ज़मीन पर पहुंच जाती है, तो और ऊंचाई से छोड़ो उसे। क्या होता है, गिरती हुई गेंद की गति कम होती है या बढ़ती जाती है?
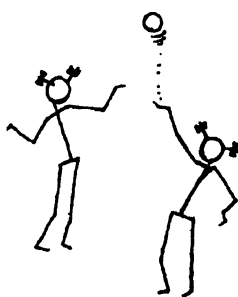
अगर फिर भी पता न चले तो गेंद को किसी ढलान से लुढ़काकर ध्यान से देखो कि गति बढ़ती है या कम होती है।

अब गेंद को ऊपर को उछालो। उछालने के लिए उस पर तुमने बल लगाया। बस उतनी ही देर गेंद पर बल लगाया जब तक उसे हाथ में पकड़कर घुमाया। हाथ से निकलते ही वह तुम्हारे बल से मुक्त हो गई। यानी तुम्हारे हाथ का बल अब उस पर नहीं लग रहा जब वह हवा में चल रही है। गेंद की गति को ध्यान से देखो।

क्या गेंद ऊपर को चलती ही जाती है?

हाथ से छूटने के बाद उसकी गति कम होती जाती है या बढ़ती है? कौन-सा बल है, जो गेंद की गति में अंतर लाता है?

ऊपर पहुंचकर गेंद क्षणभर के लिए रुकती है और फिर नीचे गिरने लगती है। ऊपर जाते समय भी वही बल लग रहा था जो अब उसे नीचे लाता है। क्या अब पहचान लिया उसे?

जी हां, यह पृथ्वी वास्तव में एक बहुत बड़ी छुपी रुस्तम है। हर चीज़ पर बल लगाती है। हर चीज़ को अपनी ओर खींचती है। दूर-दूर तक इसके बल का असर है। चांद तक को नहीं छोड़ा है - उस पर भी बल लगाती है। इसीलिए बेचारा चंदा पृथ्वी रानी के चक्कर काटता रहता है। इस बल का नाम शायद तुमने सुना हो, मुश्किल-सा लंबा-सा नाम है, गुरूत्वाकर्षण बल!

पढ़ पाए क्या इस भयंकर से नाम को। खैर, इस नाम से अभी हमें कुछ लेना देना नहीं । पहले इस बल का असर तो पहचान लें। ठीक है ना?
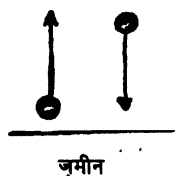
नीचे गिर रही गेंद पर लग रहे बल की दिशा दिखाओ। अब ऊपर उछाली गई गेंद पर लग रहे बल की दिशा दिखाओ।

क्यों, कहीं चक्कर में तो नहीं पड़ गए। यह तो नहीं सोच रहे कि गेंद ऊपर जा रही है पर बल कहीं और लग रहा है। ऊपर को क्यों नहीं लग रहा।

लो, फिर से ध्यान से सुनो। गेंद को तुमने उछाला, है न। जब तक गेंद तुम्हारे हाथ में थी तुम उस पर बल लगा रहे

थे। बस तभी तक तुम ऊपर को बल लगा रहे थे। **हाथ से निकलते ही अब उस पर तुम्हारा बल नहीं लग रहा।** जा तो रही है ऊपर, पर उस दिशा में कोई बल नहीं लग रहा है। उस पर तो बस एक ही बल लग रहा - पृथ्वी रानी का खिंचाव। और उस बल की दिशा पृथ्वी की ओर है।

यह बात बिल्कुल वैसी ही है जैसे ठेला छोड़ देने पर हो रहा था। धकेलते हुए ठेले को छोड़ दिया तो भी ठेला आगे को चल रहा था - पर एक छिपा हुआ बल, सतह का 'रगड़न' बल, उल्टी दिशा में लग रहा था। दरअसल यह सभी छुपे हुए बल हमारे दिमाग में परेशानी पैदा करते हैं। पर हमें सतर्क रहना है, और इनके चक्कर में नहीं पड़ना। हमें तो बस यह देखना है कि:

वस्तु की गति अगर कम हो रही है तो ज़रूर उल्टी दिशा में कोई बल उसे रोक रहा है।

वस्तु की गति तेज़ हो रही है तो ज़रूर कोई बल उसी दिशा में उसे खींच रहा हैं या धकेल रहा है।

यह दो बातें याद रहें तो उस छुपे चोर को तुम आसानी से ढूंढकर पहचान लोगे।

बूझो तो मानें:

एक माझी नाव चला रहा है। यदि वह चप्पू चलाना बंद कर दे तो चलती नाव की गति में क्या अंतर आएगा?

नाव की गति में इस अंतर का कारण बताओ। यहां कौन-सा छिपा बल काम रहा है, और किस दिशा में?

पृथ्वी रानी हमें अपनी ओर न खींचती तो....

हमने देखा कि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर खींचती है। गेंद हो या पत्थर, पेड़ या पुस्तक, गाय, भैंस, चूहा, मेंढक सभी पर पृथ्वी अपना बल लगा रही है। हां और हम पर, तुम पर सभी इंसानों पर भी पृथ्वी का बल लग रहा है। इसलिए

तो हम सब पृथ्वी पर पड़े हैं। नहीं तो दूर कहीं अंतरिक्ष में मंडरा रहे होते, क्यों है ना मज़ेदार ख्याल!

अच्छा, अब तुम कल्पना करो कि यदि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर न खींचती तो क्या-क्या होता। यह केवल कल्पना की बात नहीं है। ऐसा कई लोगों ने अनुभव भी किया है – उन सबने जो लोग अंतरिक्ष यान में बैठकर पृथ्वी से दूर चले जाते हैं। वहां ऊपर पृथ्वी का खिंचाव कम हो जाता है। और फिर उनके जीवन में बड़ी रोचक घटनाएं होने लगती हैं। जैसे, कोई भी वस्तु अपनी जगह पर टिक कर नहीं रहती। सामान नीचे बैठा नहीं रहता। बर्तन पटिए पर नहीं जमे रहते। पुस्तक, पेन, टेबिल पर नहीं पड़े रहते। और तो और, वे लोग खुद कुर्सी पर बैठ नहीं सकते - कुर्सी कहीं और, वे कहीं और मंडराने लगते हैं। पांव भी नीचे नहीं रहते - बल्कि व्यक्ति का सिर कहीं, और पैर किसी दूसरी दिशा में होते हैं।

और सुनो, गिलास में पानी उड़ेलना तक मुश्किल हो जाता है, क्योंकि पानी नीचे को न गिरकर कहीं भी जा सकता है। जितना सोचो, उतना ही अद्‌भुत दृश्य उभरता है। जीवन मानो पूरी तरह से उल्टा-पुल्टा हो गया है। जब भारत के राकेश शर्मा अंतरिक्ष यात्रा पर गए थे तो टी.वी. पर उनकी फिल्म दिखाई गई थी। फिल्म में भी उनके यान के अंदर का कुछ ऐसा ही मनोरंजक दृश्य था, किसी ने देखा था क्या?

अंतरिक्ष में तो हवा भी नहीं होती। वैसे, अंतरिक्ष यान में हवा का खास इंतज़ाम होता है।

पर हमारी पृथ्वी अगर एक दिन हवा को अपनी ओर खींचना बंद कर दे, तो हवा भी अंतरिक्ष में उड़ जाएगी, पृथ्वी के आसपास नहीं खिंची रहेगी। फिर तो सारी कहानी ही खत्म हो जाएगी।

पर रुको, मान लो यह हवा का चक्कर नहीं है। फिर क्या तुम इस कल्पना को आगे बढ़ा सकते हो? कोशिश करो, और कुछ

नई बातें सोचकर लिखो, जो तब घटेंगी जब पृथ्वी सब चीज़ों को अपनी ओर खींचना बंद कर दे।

प्रयोग-3: भार क्या है
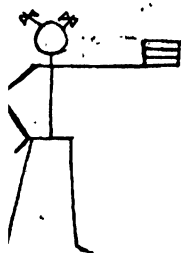
अपनी बांह बाहर की ओर फैला लो और हथेली ऊपर को करो। अपने साथी से कहो कि तीन किताबें तुम्हारी हथेली पर रख दे। क्या हथेली पर कोई बल महसूस हुआ? इस बल कि दिशा क्या है?
अब साथी से एक और पुस्तक हथेली पर रखवाओ।
अब हथेली पर अधिक बल क्यों महसूस हुआ?
अनुमान से बताओ कि बांह को बिना झुकाए तुम अपनी हथेली पर ऐसी कितनी किताबें उठा सकते हो?
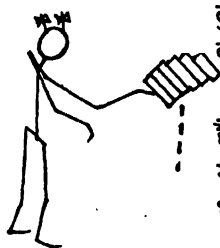
पुस्तकों के कारण जो बल तुम्हारी हथेली पर लग रहा है उसका एक आसान-सा नाम है। बता सकते हो? जी हां, वह बल पुस्तकों का भार भी कहलाता है। हां, वही भार या वज़न, जिसे तुम पहले से पहचानते हो। पृथ्वी जिस बल से पुस्तकों को खींचती है, वही बल पुस्तकों का भार है। और वही तुम्हारे हाथ पर महसूस हो रहा है। यानी हर वस्तु का भार दरअसल वह बल है जो पृथ्वी उस पर लगा रही है।

जब तुम कहते हो कि 'गेहूं' के बोरे का भार 20 किलो है, तो उसका मतलब है उस पर लग रहे खिंचाव बल की मात्रा 20 किलो भार है। दरअसल भार की इकाई को 'किलो भार' ही कहना चाहिए पर हम लोग अक्सर छोटे में उसे 'किलो' ही कहते हैं। अन्य किसी बल की इकाई को 'न्यूटन' कहते हैं, जो प्रसिद्ध वैज्ञानिक के नाम पर रखी गई है।

चांद पर तुम्हारा भार:

चौंक गए क्या? नहीं, नहीं हुजूर, तुम्हें चांद पर नहीं भेज रहे। केवल कल्पना कर रहे हैं कि यदि तुम चांद पर पहुंच जाओ तो वहाँ तुम्हारा भार कितना होगा।

हमने देखा है कि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर खींचती है। पर यह गुण केवल पृथ्वी का ही नहीं है। कोई भी विशाल वस्तु अन्य चीज़ों पर अपना खिंचाव बल लगाती है। जितनी ज़्यादा विशाल काया होगी उतना ही उसके खिंचाव का असर ज़्यादा होगा। चांद भी एक विशाल वस्तु है। इसलिए चांद भी अपने आसपास की चीज़ों पर खिंचाव बल लगाता है। पर चांद पृथ्वी से तो छोटा है। इसलिए जितने बल से पृथ्वी किसी चीज़ को खींचती है, चांद उसी चीज़ को कम बल से खींचेगा। चांद का खिंचाव बल पृथ्वी से 6 गुना कम है।
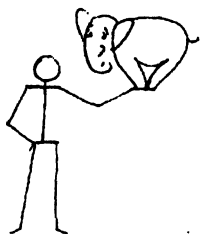
अब मान लो पृथ्वी पर तुम्हारा भार 36 'किलो भार' है। तो चांद पर पहुंच जाने पर क्या होगा? चांद पर तुम्हारा भार 6 गुना कम हो जाएगा। यानी देखने में तो तुम वैसे ही दिखोगे, उतने ही लंबे चौड़े, पर तुम्हारा भार चांद पर केवल 36 ÷ 6 = 6 'किलोभार' आएगा। यानी वहां तुम बिलकुल हल्के हो जाओगे। वाह, क्या मज़ा आएगा। एक कदम रखोगे तो दूर तक फुदक जाओगे। और चूंकि हर चीज़ वहां हल्की हो जाएगी, तुम बड़ी दिखने वाली वस्तु को आराम से उठा लोगे।

इसी तरह मान लो हम तुम्हें बृहस्पति जैस ग्रह पर पहुंचा देते हैं। बृहस्पति की काया तो पृथ्वी से भी अधिक विशाल है। इस लिए वहां पर खिंचाव बल पृथ्वी से 5 गुना अधिक है। उस ग्रह पर तुम्हारा भार यहां से 5 गुना अधिक होगा। वहां तुम हो जाओगे 36×5 यानी 180 किलो भार के। बाप रे, इतने भारी हो जाओगे कि लगेगा तुम लोहे के बने हो।

खैर, खिंचाव बल की यह भारी बातें छोड़ें। और अन्य ग्रहों की इस काल्पनिक सैर से लौटकर फिर पृथ्वी के दामन में लौट चलें।

बलों की कुश्ती: वस्तु पर कुल कितना बल?

तुमने पंजा तो लड़ाया होगा। नहीं! तो ज़रूर लड़ाकर देखना। जब तक दोनों लोग बराबर बल लगाते रहते हैं, दोनो
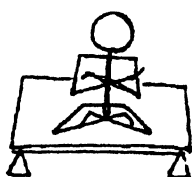
के पंजे बीच में रहते हैं। यानी दोनों बल आपस में कट जाते हैं और पंजे वहीं टिके रहते हैं। पर जैसे ही किसी एक का बल अधिक हो जाता है, पंजे उस बल की दिशा में झुकने लगते हैं।
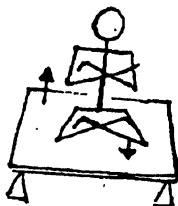
इसी तरह ठेले पर दो विपरीत और बराबर बलों की बात हमने पहले की थी। दो-दो बल लगने पर भी ठेला चलता नहीं, उसमें गति नहीं होती। चूंकि दोनों बल बिल्कुल बराबर हैं और ठीक उल्टी दिशा में हैं, इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि ठेले पर कुल बल शून्य है।

अब एक उदाहरण लेते हैं। एक बच्चा चौकी पर बैठा है। इस बच्चे पर क्या कोई बल लग रहा है?
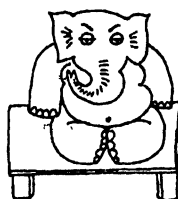
एक बल तो तुम जानते हो, पृथ्वी का खिंचाव बल। पर क्या केवल वही एक बल है? यदि एक वही बल होता तो बच्चा तेज़ी से पृथ्वी की ओर खिंचता चला जाना चाहिए। पर ऐसा नहीं हो रहा। क्यों? क्योंकि चौकी उसे सहारा दिए है। यानी चौकी बच्चे पर ऊपर की ओर बल लगा रही है - चौकी जो बल लगा रही है वह बच्चे के भार के बराबर है, और उससे उल्टी दिशा में है। तभी तो दोनों बल आपस में कट सकते हैं। चौकी उतना ही बल लगाकर ऊपर को सहारा देती है जितना भार उस पर लग रहा हो। पर यदि बहुत ही अधिक बल उसको नीचे दबाए, तो फिर उतना उल्टा बल लगाने की क्षमता उसमें नहीं रहती। फिर जो अन्जाम होता है वह कुछ ऐसा है।
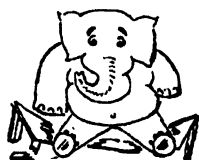
अब एक और उदाहरण देखते हैं, जिसमें दो बलों की कुश्ती में दोनों बराबर हैं। यानी कुल बल शून्य है।

एक नाव पानी पर तैर रही है। चल नहीं रही, खड़ी है। नाव पर क्या नीचे को बल लग रहा है? नाव स्थिर है, नीचे नहीं डूब रही। तो अवश्य कोई दूसरा उल्टा बल ऊपर को लग रहा है, जो उसे सहारा दे रहा है। नाव पर ऊपर की ओर कौन-सा बल लग रहा है?

इन दोनों उदाहरणों से हमने देखा कि जिन स्थितियों में लगता तो है कि, कोई बल-वल नहीं है वहां भी बलों का पंजा लड़ाना चल रहा होता है। लगता है कि वस्तुएं आराम से बैठी हैं, या लेटी हैं, पर उन पर दो-दो (या और भी) छिपे बल काम कर रहे होते हैं। दरअसल इस पृथ्वी पर तो बिना बल की कोई परिस्थिति नहीं होगी। हम ज़मीन पर खड़े हैं तब भी हम पर दो बराबर बल लग रहे हैं - एक पृथ्वी का खिंचाव बल, और दूसरा ज़मीन का सहारा देने वाला बल। पर आपस में ये दोनों कट जाते हैं इसलिए हमें कुछ महसूस ही नहीं होता। यानी हम पर कुल बल शून्य होता है। इसलिए हमें भ्रम होता है कि कोई बल ही नहीं लग रहा हम पर। एक आखिरी उदाहरण, जहां हम तो खूब बल लगाते हैं पर उसका असर नहीं दिखता।

खूब भरा हुआ ठेला है। बहुत धक्का लगाने पर भी ठेला टस से मस नहीं हो रहा। भला, कौन-सा बल हमारे धक्के को काट रहा है? बूझ पाए क्या? या हमें ही बताना पड़ेगा। हां, वही 'रगड़न' मियां। ठेला भारी होने से उस पर लग रहा सतह का 'रगड़न' बल भी अधिक है। अब यदि हमें इस 'रगड़न' बल से कुश्ती जीतनी है तो और अधिक बल लगाना होगा। यदि हम उतना बल अकेले न लगा पाएं तो एक साथी की मदद लेनी होगी।
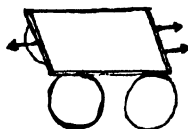
हां, अब देखो ठेला चल ही पड़ा - यानी हम दोनों का बल उस 'रगड़न' बल से अधिक हो ही गया।

इसको तीर से दिखाना हो तो ऐसे दिखा सकते हैं या फिर दूसरी तरह ऐसे।

यहाँ आगे को लगते दोनो बलों को जोड़कर एक लंबा तीर बना दिया है। जबकि पीछे को लग रहा सतह का रगड़न बल कम है, इसलिए तीर छोटा ही है।

अब कुछ करने के लिए

हमें विश्वास है अब तुम भी पूरी तरह से 'बलवान' हो गए हो, यानी बल का इतना ज्ञान हो गया है कि अब तुम किसी वैज्ञानिक से कम नहीं। क्यों, ठीक कहा हमने? अभ्यास के लिए नीचे दिए कुछ प्रश्नों के उत्तर दो:

नीचे दिखाई वस्तुओं पर क्या कोई बल लग रहे हैं?
यदि हां, तो किस-किस दिशा में? तीर से दिखाओ।

1. लात से उछाली गई गेंद

2. ढलान पर लुढ़कती गेंद

3. पत्थर पर बैठी चिड़िया
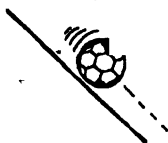
4. पेड़ से गिरता फल

5. पानी पर लेटकर तैर रहा बच्चा

नीचे कुछ अधूरे वाक्य लिखे हैं, जिन्हें पूरा करना तुम्हारा काम है।

1. ऊपर उछाली गई गेंद पर बल .... की दिशा में लग रहा होता है।
2. हर वस्तु पर पृथ्वी जो खिंचाव बल लगाती है उसे वस्तु का.......कहते हैं।
3. लुढ़कती हुई गेंद पर सतह का 'रगड़न' बल लगने से गेंद की गति ....होती जाती है।
4. पैडल चलाना बंद कर दें तो चलती साइकिल इसलिए रुक जाती है क्योंकि उस पर...................बल लग रहा होता है।

नीचे दिए वाक्यों में से सही/गलत चुनो:

1. हम खटिया पर सो रहे हों तो हम पर कोई भी बल नहीं लग रहा होता।
2. ढलान पर से लुढ़कते ठेले की गति नीचे आते-आते कम होती जाती है।
3. चलती हुई वस्तु पर कोई भी बल न लगे तो वह हमेशा चलती ही जाएगी, कभी रुकेगी नहीं।
4. हम चांद पर चले जाएं तो वहां हम पर कोई खिंचाव बल नहीं लगेगा।
5. पृथ्वी का खिंचाव बल आकाश में उड़ते पक्षियों पर भी लगता है।
6. हवा में चलते तीर पर केवल एक ही बल होता है जो नीचे पृथ्वी की ओर लगता है।

कुछ प्रश्न यहां दिए हैं। इनके उत्तर अपने शब्दों में समझाकर लिखो।

1. तुम पृथ्वी पर खड़े हो। पृथ्वी तुम्हें अपनी ओर खींच रही है, ठीक है। पर तुम्हें पृथ्वी का कोई खिंचाव बल महसूस नहीं होता। भला, ऐसा क्यों?
2. तुमने कंचे को दरी पर लुढ़काने वाला प्रयोग किया था। देखा था कि हर बार दरी पर कुछ दूर जाकर कंचा रुक जाता था। अब मान लो यही प्रयोग हम चिकनी बर्फ पर कर रहे हैं - तो बर्फ पर लुढ़कता कंचा पहले से कम दूरी पर रुकेगा या अधिक? दूरी में यह अंतर क्यों आएगा।

(अनीता रामपाल - होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध)

∞ ∞ ∞
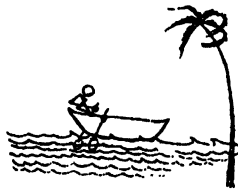
आइए सुनिए किस्सा, एक नए ढंग की परीक्षा का। चाहे अनचाहे परीक्षा शिक्षा व्यवस्था का एक आधार-स्तंभ बन ही जाती है। इस विषय पर भी शिक्षा के अन्य पहलुओं की तरह असंख्य मत हैं। हम यहां पर खुली किताब की परीक्षा के एक अनुभव का हिस्सा दे रहे हैं।

नई किताबें, नई परीक्षा

सामाजिक अध्ययन विषय कक्षा छह, सात एवं आठ में पढ़ाया जाता है। यही वह विषय है जिसके बारे में यह बात बहुत प्रचलित है -

इतिहास, भूगोल बड़े बेवफा,
रात को रटे और सुबह तक सफा।

इस बदनाम विषय को रटन्तपन की मजबूरी से छुटकारा दिलाने की कोशिश हमने की। इस प्रयास में बहुत-सी बातें भी हमने बदलीं। इसके लिए सबसे पहले तो जानकारी को रटने की बजाए समझने पर ज़ोर देने वाली पाठ्यपुस्तकें नए सिरे से तैयार कीं। ये

जब यह परीक्षा पद्धति शुरू हुई तो डर था कि लोग स्वीकार करेंगे या नहीं, लेकिन फिर लगा कि विषय को रटने की मजबूरी से छुटकारा दिलाना है तो यह कदम भी उठाना पड़ेगा। किस्सा खुली किताब परीक्षा का।

परीक्षा तो थी, फिर भी....

पाठ्यपुस्तकें मध्यप्रदेश सरकार की अनुमति से आठ स्कूलों में प्रयोग के तौर पर पढ़ाई जा रही हैं।

इसके बाद बच्चों का मूल्यांकन करने की प्रणाली को बदला गया। क्योंकि किताबें बदली जाएं और परीक्षा का तरीका न बदले तो सब किए कराए पर पानी फिर जाता है। इसलिए बच्चों की सोच-समझ और अभिव्यक्ति को जांचने वाले प्रश्न बनाने की कोशिश हुई और अहम् निर्णय लिया गया कि परीक्षा में छात्र पाठ्यपुस्तक का उपयोग कर सकते हैं, यानी परीक्षा खुली किताब वाली होगी।

यह निर्णय लिया तो बड़ी उधेड़बुन के बाद गया था। माध्यमिक शाला के स्तर पर खुली किताब वाली परीक्षा और वो भी फिर सामाजिक अध्ययन में - डर लग रहा था कि पता नहीं इस परीक्षा को लोग स्वीकार करेंगे या नहीं? अलग ढंग के नए-नए प्रश्न कैसे बनाएंगे, बच्चों के उत्तरों को अंक कैसे देंगे? आदि-आदि। पर दूसरी ओर मामला बिल्कुल साफ था। रटने, रटवाने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी है तो पुस्तक तो देनी ही पड़ेगी। इस प्रयास को पूरा करने में कई अड़चनें आईं, कई बातें सीखीं, कई बातें सोचनी पड़ीं। इन सबके बारे में कभी बाद में। अभी इस खुली किताब वाली परीक्षा की कुछ झलकियां।

वे पन्ने पलटते रह गए

पहले तो बच्चों को लगा कि परीक्षा में पुस्तक होगी तो घर पर कुछ तैयारी करने की ज़रूरत ही नहीं है। सो वो बगैर पढ़े ही परीक्षा देने आ गए। पर जब प्रश्न-पत्र पढ़कर पुस्तक में से उत्तर निकालने की कोशिश शुरू की तो उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वे पन्ने पलटते रहे, पलटते रहे - और उन्हें उत्तर ढूंढने में बहुत दिक्कत हुई। बहुत समय लगा। वे प्रश्न-पत्र अधूरा ही छोड़ कर उठ गए।

तब, बच्चों को समझ में आया कि पास में पुस्तक खुली होने से समस्या हल नहीं हो जाती। पाठ पढ़ना, समझना, तैयारी की मेहनत करना अब भी ज़रूरी है।

हमें भी कुछ महत्वपूर्ण बातों का अहसास हुआ। बच्चों को कई उत्तर पता थे फिर भी वे पन्ने पलट रहे थे कि किताब में देख कर ही लिखेंगे। उन्हें यह समझाने का तरीका ढूंढना ज़रूरी था कि पुस्तक का उपयोग तभी करें, जब कुछ पता न हो, या किसी चीज़ के बारे में संशय हो। पहली कोशिश अपनी समझ से, अपने शब्दों में उत्तर देने की ही होनी चाहिए। हर प्रश्न को पुस्तक में देखकर उत्तर देने से फिजूल समय

ही खराब होता है। तब हमने यह नीति बनाई व बच्चों के बीच इसका प्रचार भी किया कि अपने शब्दों में लिखे उत्तरों को एक अंक ज़्यादा दिया जाएगा।

उपशीर्षकों की भूमिका

दूसरी बात जिसका हमें तीव्रता से अहसास हुआ वह यह थी कि पुस्तक में जानकारी ढूंढने के तरीके बच्चों को स्पष्ट रूप से सिखाने पड़ेंगे। तब हमने कोशिश की कि हर पाठ में अधिक संख्या में सटीक उपशीर्षक डाले जाएं। साथ ही पाठ के अंत में दिए जाने वाले अभ्यास के प्रश्नों में उपशीर्षकों के उपयोग से संबंधित प्रश्न खासतौर से डाले गए। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को भी उपशीर्षकों के उपयोग के प्रति सचेत किया गया।

सवाल पाठों की हैसियत का भी

इस पूरे अनुभव से सीखने का सिलसिला और बहुत आगे तक गया। जब हमने बच्चों के उत्तर जांचे और उनका विश्लेषण किया तो विभिन्न प्रश्नों का बड़ा ही अलग-अलग हश्र सामने आया। ऐसा कि जो हमारी सोच तक से बाहर था। उदाहरण के लिए यहां दो प्रश्नों के उत्तरों को देखते हैं:

एक प्रश्न था 'मुगल काल के गांव' नामक पाठ से कि *'गांवों के ज़मींदार मुगल अमीरों की क्या मदद करते थे?'* इस प्रश्न का सीधा उत्तर पाठ में कहीं एक जगह लिखा हुआ नहीं है। पाठ में एक मुगल गांव की कहानी है जिसकी घटनाओं और पात्रों के द्वारा मुगलकालीन व्यवस्था का चित्रण किया गया है।

इसका मतलब यह था कि छात्र पाठ के किसी एक अंश की नकल उतार कर नहीं लिख सकते थे और उन्होंने ऐसा किया भी नहीं। फिर भी यह प्रश्न बच्चों के लिए मुश्किल साबित नहीं हुआ। 50 में से 35 बच्चों ने संतोषजनक जवाब लिखे। उत्तर बिल्कुल न लिखने वाले सिर्फ सात बच्चे थे।

जब हमने मिलकर इन बातों का विश्लेषण किया तो यह बात समझ में आई कि ज़मींदार की गांव में जो भूमिका थी वह पाठ में कई घटनाओं के द्वारा बार-बार सजीव, रोचक व ठोस रूप से उभर कर आई थी। अतः बच्चों के मन में ज़मींदार की भूमिका की एक स्पष्ट व ठोस छवि बन गई थी और वे अपने मन में उतरी छवि और समझ के आधार पर प्रश्न का उत्तर दे पाए। इस प्रश्न के माध्यम से हम यह मूल्यांकन कर पाए कि बच्चों ने पाठ में बिखरी हुई जानकारी कैसे अपनी समझ के सहारे निकाली और अपने शब्दों में लिखी।

प्रश्नः गांव का ज़मींदार मुगल अमीरों की क्या मदद करता था?

विद्यार्थियों के उत्तरों के कुछ उदाहरण....

1. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की लगान वसूल करने में मदद करते थे। और किसी किसान को गांव से भागने नहीं देते थे। उन्हें रोका जाता था। गांव में नए किसानों को बसाने के लिए पूरी छूट देते थे। ताकि वह ज़मीन जोतें। और लगान पूरा भरा जा सके।

2. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की लगान वसूल करने में मदद करते थे। तथा किसानों को दबा धमका कर लगान इकट्ठा करते थे।

3. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की मदद कर में करते थे। गांव गांव से कर इकट्ठा करते थे और सब हिसाब अपने पास रखते थे और बाद में कर का पूरा पैसा मुगल अमीरों को दे देते थे।

4. गांव के ज़मींदार मुगल अमीलों को किसानों से लगान इकट्ठी कर के देते थे। और आमिल वह लगान मुगल अमीरों को देता था। इस प्रकार गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की मदद करते थे।

यह पाठ छोटा-सा

अब आइए एक दूसरे प्रश्न के उदाहरण पर। यह ज़मींदार वाले प्रश्न से एक बिल्कुल अलग स्थिति प्रस्तुत करता है। प्रश्न था इतिहास के ही एक-दूसरे पाठ 'अंग्रज़ों के शासन में जंगल और आदिवासी' से।

प्रश्नः बाहर के लोग वन की ज़मीन पर लगान आसानी से क्यों चुका पाते थे?

पाठ के एक अंश में यह बताया गया है कि आदिवासी लोग अपनी ज़मीनों पर अंग्रेज़ों द्वारा मांगा लगान कई बार नहीं चुका पाते थे, जबकि बाहर के लोग (सेठ, साहूकार, ज़मींदार) वन की ज़मीन पर अधिकार करके लगान चुका पाते थे क्योंकि वे लकड़ी काट कर उसका व्यापार करते थे। उन दिनों लकड़ी की मांग बहुत बढ़ गई थी।

अचरज की बात यह है कि इस प्रश्न का उत्तर एक सटीक पैराग्राफ में इस छोटे से पाठ में लगभग शुरू में ही लिखा हुआ है। उम्मीद तो यह की जानी चाहिए थी कि अधिकांश बच्चे इस पैराग्राफ की नकल उतार कर लिख देंगे और प्रश्न को सही-सही हल कर देंगे। पर 50 में से 32 बच्चे इस सटीक पैराग्राफ को नहीं ढूंढ पाए। पैराग्राफ की नकल उतारी 11 बच्चों ने, 7 बच्चों ने इस अंश की बातें अपने शब्दों में लिखीं। यानी कुल 18 उत्तर ठीक थे। अब बताइए हम क्या सोचें?

प्रश्नः बाहर के लोग बन की ज़मीन पर लगान, आसानी से क्यों चुका पाते थे?

विद्यार्थियों के उत्तरों के कुछ उदाहरण....

1. मगर खेती करने को आदिवासी किसान इस तरह लकड़ी नहीं बेचते थे। वे सरकार को लगान समय पर नहीं चुकाना पाते लगान नहीं चुकायी तो जमीन नीलाम हो जाती नीलामी से बचने के लिए आदिवासी सेठ साहूकारों से कर्जा लेते थे। आदिवासियों की जमीन नीलाम करवा कर खरीद ली। अब आदिवासी साहूकारों के बटाईदार . . .

(यह अंश पाठ में सही अंश के ठीक बाद आता है)

2. स्वतंत्रता के बाद भारत में बेगार करवाना तो गैर कानूनी हो गया पर जंगल के उपयोग को लेकर वही पुरानी समस्याएं बनी हुई हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत की सरकार ने वनों आरक्षित करने और लोगों द्वारा वन पर (इ)स्तमाल रोक लगाने की नीति कमयाब (कायम) रही। गांव के लोग को वनों का इस्तमाल करते थे। और इनमें उपयोगी चिज (चीज़) बेच कर लगान आसणि (आसानी) से देते थे।

(पहली सात पंक्तियां पाठ के अंत से ली गई हैं। फिर कुछ अपने आप जोड़ा गया है।)

3. क्योंकि जमीन पर अनाज बहुत होता उसे बेच कर जमीन की लगान दे देते थे और उन्हें देना अखरता नहीं था

(अपना अनुमान लगाते हुए लिखा गया है)

पाठों की तुलना

50 में से 32 छात्र क्यों नहीं ढूंढ पाए इस प्रश्न का उत्तर? पुस्तक सामने होते हुए भी।

चलिए ज़रा पाठ के स्वरूप को जानें। यह पाठ 'मुगल काल के गांव' से बिल्कुल अलग था। इसमें न कहानी थी, न किस्से, न पात्र, न घटनाएं। पाठ में कई जटिल प्रक्रियाएं संक्षेप में, तेज़ी से व एक बार में ही बताई गईं थीं।

ठोस, सजीव कहानीनुमा वर्णन जिसमें मुख्य बातों की कई बार पुनरावृत्ति हो जाती है - यह तकनीक इस पाठ के लिखने में नहीं अज़माई गई थी।

इसीलिए शायद बाहर के लोगों की गतिविधियों की छवि बच्चों के मन में नहीं बन पाई थी और वे इस प्रश्न का उत्तर ठीक से नहीं दे पाए। इस तरह मज़ेदार बात यह रही कि बच्चों की

मुगल काल के गांव...एक अंश

ज़मींदार सूरजदेव जाट ने पटवारी और पटेल को बुलाया और उनसे लगान इकट्ठा करने को कहा।

पटवारी बोला, "अगर कोई देने से इंकार कर दे तो?"

ज़मींदार बोला, "मेरे दो घुड़सवार और चार सिपाही आपके साथ चलेंगे - देखते हैं किस की हिम्मत है मना करने की।"

लगान इकट्ठा करने में तीन-चार दिन लग गए। कुछ किसानों के खेत में ओले पड़े थे तो उनसे लगान नहीं मिल सका।

जब जागीरदार का आमिल लौट कर आया तो ज़मींदार सूरजदेव ने उसे हिसाब समेत इकट्ठी लगान की रकम थमा दी। आमिल ने पूछा कि पैसे पूरे क्यों नहीं हैं।.....

अंग्रेज़ी शासन में वनों का उपयोग...एक अंश

...अब बाहर के सेठ, साहूकार व ज़मींदार आकर जंगल की ज़मीन अपने नाम से दर्ज कराने लगे। जंगल पर उनका हक होने लगा। मगर उन्हें जंगल से क्या लाभ मिला?

उन दिनों लकड़ी की खूब मांग बढ़ रही थी। रेल के स्लीपरों के लिए, जहाज़ों के लिए, शहर में बन रही कोठियों, दफ्तरों, घरों के लिए। सेठ, साहूकारों ने जंगल की ज़मीन लेकर लकड़ी दनादन काटी व बेच कर मालामाल हो गए। इस धन से वे सरकार का लगान आसानी से चुका पाए।

मगर खेती करने वाले आदिवासी, किसान इस तरह लकड़ी नहीं बेचते थे। वे सरकार का लगान समय पर नहीं चुका पाते थे। लगान नहीं चुकाई तो ज़मीन नीलाम हो जाती। नीलामी से बचने के लिए आदिवासी सेठ, साहूकारों से कर्ज़ा लेने लगे।.....

(यह पाठ नए संस्करण में बदला जा चुका है)

क्षमता के साथ-साथ हम पाठों की क्षमता का मूल्यांकन भी करने लगे।

नकल और अक्ल

दूसरी बात जो स्पष्टतः कही जा सकती है वह यह कि किताब से उत्तर निकाल पाना (वो भी परीक्षा के एक निश्चित समय के अंदर) एक अच्छी खासी कुशलता जान पड़ती है। इसमें कई छोटी-छोटी कुशलताएं शामिल हैं - जैसे ध्यान से पढ़ना, विषय व प्रश्न के संदर्भ को समझना, पाठ के शीर्षक व उपशीर्षकों को उपयोग में लाना और सबसे बढ़कर तो धीरज रखना। पुस्तक हाथ में होने से परीक्षा में बच्चों के लिए करने को कुछ नहीं रहता - यह कहने से पहले लोगों को दुबारा सोच लेना चाहिए।

उपरोक्त दोनो प्रश्नों में ही देखें तो कई बच्चों ने पुस्तक के अंश को नकल करके लिखा था। इससे सहज ही हमारे मन में बड़ी दुविधा पैदा होती है। नकल को क्यों अच्छे नंबर दिए जाएं? हम सोचने लगते हैं उसने कुछ भी तो नहीं किया। सिर्फ नकल करके लिखा है - फिर अंक क्यों?

हमने इस मुद्दे पर बहुत मन टटोला। सोचा कि जब हम पुस्तक उपलब्ध करवा रहे हैं तो बच्चों द्वारा पुस्तक के अंश उतारकर लिखने की कोशिश स्वाभाविक है। इसे गौण क्यों मानें? अगर यह क्षमता इतनी सरल है तो सारे विद्यार्थी नकल क्यों नहीं कर पाए? फिर 'नकल' में भी बच्चों की क्षमता के विभिन्न स्तर दिखाई पड़ते हैं। कुछ बच्चों ने सटीक, स्पष्ट अंश पाठ में से उतारे हैं। कुछ ने उचित पाठ्यांश में से अधूरी व अस्पष्ट बात ही उतारी है। कुछ ने उचित अंश उतारने के साथ-साथ आगे या पीछे के असंगत वाक्य भी उतार डाले हैं।

हम तो यही निष्कर्ष पर पहुंचे कि नकल वाले उत्तरों में भी बच्चों की क्षमता का मूल्यांकन करने की बहुत गुंजाइश है। समझदारी के साथ पढ़ने व लिखने की क्षमता एकदम आधारभूत क्षमता है। अगर हमने अपने विद्यार्थियों को इसमें दक्ष नहीं किया और मूल्यांकन करके यह सुनिश्चित नहीं किया कि हमारे माध्यमिक शाला से उत्तीर्ण छात्र समझदारी के साथ पढ़ व लिख पाते हैं तो फिर हमने स्कूल लगाकर आखिर क्या किया?

आपको सामाजिक अध्ययन शिक्षा में खुली किताब परीक्षा के बारे में क्या लगता है? अपने विचार हमें लिखें। वैसे सामान्य सामाजिक अध्ययन की परीक्षा के बारे में आपका क्या कहना है? हम चाहेंगे कि परीक्षा पर इस बातचीत को जारी रखें ताकि मूल्यांकन के शैक्षिक उद्देश्यों को उभारा जा सके।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम, एकलव्य

'ह' में 'आ' की मात्रा 'हा' !

* * * *

शिक्षक ने कहा दहाई का 1, इसके पीछे लिखा 5 - क्या बना? बच्चों ने कहा '15', ऐसे ही बात आगे बढ़ी... लेकिन नहीं, शिक्षक को लगा उसके प्रयास में कुछ गड़बड़ है - बच्चे ऊब रहे हैं, उसने यह बात अपनी डायरी में दर्ज की।

एक शिक्षक की डायरी यानी एक ऐसा रोज़नामचा जिसमें हर उस प्रयास का अवलोकन दर्ज है जो उसने बच्चों को कुछ सिखाने के लिए किया है - ताकि वह कक्षा में उठाए गए अपने हर कदम पर बारीकी से टीका-टिप्पणी कर सके और उसके आधार पर फिर कुछ नया प्रयास कर सके - इसलिए कि बच्चे कुछ सीख सकें।

ऐसी ही एक डायरी के चंद पन्ने जो **गंगा गुप्ता** ने पाठई, ज़िला बैतूल की प्राथमिक शाला में बच्चों को पढ़ाने के दौरान हुए रोज़मर्रा के अनुभवों को लेकर लिखी थी।

28 जनवरी 1988

बोर्ड पर अक्षर लिखती गई और बच्चों से पूछती भी गई - "ह'अब ये 'आ' की मात्रा 'हा' और ये 'र' - अब पढ़ो क्या लिखा है?"

"हार" मंगलेश ने झट से जोड़कर पढ़ा। मैंने कहा, "अच्छा अब तुम नहीं बता सकते।" मैंने लिखा 'हाथ' मुकेश ने पढ़ा "हाथी" - ललिता बोली, "नई 'हाथ' बहनजी हाथ!"

"अच्छा अब बताओ" मैंने लिखा 'काना' - मंगलेश बोला, "बहनजी आप तो 'आ' की मात्रा खूब लगा देती हैं।" मैने कहा, "तो क्या हुआ - पढ़ो..'क' में 'आ' की मात्रा 'का', 'न' में 'आ' की मात्रा ना।" ललिता बोली, "बहनजी - काना" ममता एक हाथ से आंख दबाकर, "ऐसा होता है काना!"

फिर मैंने 'तल' लिखा, मुकेश बोला "त' 'ल' 'तल' बहनजी 'तल।" मैंने कहा, "हां भइया जे तो पूड़ी तल, भजिया तल वाला तल लिखा है।" सभी बच्चे खूब हंसे।

इस गतिविधि में काफी मज़ा आ रहा था। पहले मैंने जोड़कर ही पढ़ाया परन्तु अब अक्षर तोड़कर नहीं लिख रही थी - अक्षर शब्द से ही जुड़े थे।

नोट : कुछ शब्द जानबूझकर चित्र-कार्ड* वाले लिखे थे। यह जानने के लिए कि पहले जो अभ्यास कराया था वो इन्हें याद है या नहीं, परन्तु उन शब्दों को लगभग सभी ने पहचान लिया। उनमें अधिक उत्साह लाने के लिए ही मैं उनसे कहती 'अब तो तुम बता ही नहीं सकते।' तो बच्चे जल्दी बताने की कोशिश करते। इस गतिविधि में मुझे और बच्चों को काफी मज़ा आया। मुझे कुछ आशा बंधी कि शायद ऐसे ही बच्चे पढ़ना सीख जाएं।

---

* बच्चों को भाषा सिखाने की एक महत्त्वपूर्ण सामग्री - कार्ड के एक तरफ किसी चीज़ का चित्र बना होता है और दूसरी तरफ बड़े अक्षरों में उस वस्तु का नाम, इनसे बच्चों के साथ सामूहिक तौर पर या टोलियों में भाषा की तरह-तरह की गतिविधियां की जा सकती हैं। इसके अलावा और भी कई तरह के चित्र-कार्ड बनाए जा सकते हैं।

20 सितम्बर 1988

आज स्कूल में उपस्थिति बहुत कम थी। अतः सोचा घर-घर जाकर बच्चों के पालकों से संपर्क कर उन्हें अपने बच्चे स्कूल में भेजने के लिए प्रेरित किया जाए। प्रत्येक घर जाकर पालकों से संपर्क किया। पालकों ने जो जवाब दिए वो इस प्रकार हैं —

पुनिया : "बहनजी लड़की 10 साल की हो गई है। अब तो लड़की कूं जाए है, पहली पढ़ा के का आ जाएगो।"

इमला : "हम तो भेजने कूं तैयार हैं पर स्कूल बड़ी दूर है, तुम जेई ढाना में पढ़ाओ तो भेजेंगे।"

छोटीबाई : "नई भेजें। बड़ी दूर है, तुम घेर के रोज़ लिजाओ, उते के ढाने के मोड़ा-मोड़ी मारे हैं।"

राजेश : "कल से भेजेंगे, अबे बुखार से उठो है।"

महेश : "बकरी कौन चराएगा बहनजी .... पूछ भई ओसे जाएगो तो।"

चिरोंजी : "बेहनजी, स्कूल दूर है।"

अशोक : "हम तो कहे हैं, वो जात नई है, तो हम बकरी चराए कूं भेज दे हैं।"

कैलाश : "आऊंगा बहनजी कल से।" (कैलाश के पालक घर पर नहीं थे)

मनोरी : "बहनजी, बकरी चराता है .... बहनजी का पढ़ाएगी ...... गुरुजी होता तो पढ़ाता।"

किसन : "ले जाना बहनजी, वो नई जाता तो का करें।"

पप्पू : "बकरी कौन चराएगा बहनजी।"

अशोक बिरजू : "बैल चराता है, बड़ा भाई पढ़ने जाता है।"

सुक्का : "का बहनजी, हम सब देखा है, तुम का पढ़ाते हो - घड़ी भर आए .... और चले का करें। मोड़ा-मोड़ी घर के काम करेगो।

वहां तो 100 तक गिनती भी नहीं आए है ...... खेल खेलवे नई भेजें हम।"

विस्सू *: "कुछ नहीं पढ़ाती हो तुम। मास्साब रहे तो पढ़ाए। दो साल से फेल हो रहा है। नाम लिखना नहीं आता - का करेंगे भेजके। कम-से-कम कृषानी सीखेगा, नई तो स्कूल से भी जाएगा और कृषानी भी नहीं आएगी।"*

जहां तक मुझसे बना उन्हें समझाकर संतुष्ट किया। और शिक्षा का महत्व बताते हुए बच्चों को स्कूल भेजने को कहा। कुछ ने कहा कि भेजेंगे। इस प्रकार चार बज गए। और मैं वापस शाला आ गई। बच्चों से कुछ नहीं करा पाई। उन्हीं ने बैठके चित्र बनाए। किसी ने गिनती लिखी। छुट्टी हो गई।

21 सितम्बर 1988

सभी बच्चों को भाई बहनों के नाम लिखना सिखाया। बहुत उत्साह से बच्चे अपने भाई बहनों के नाम बताकर लिखने की कोशिश कर रहे थे। नाम लिख लेते तो बहुत खुश होते। बड़े मनोयोग से वे इस गतिविधि में जुटे थे। सबने पहले नकल की। तीन चार बार नकल करने के बाद बिना देखे नाम लिखकर बताया। मैं कहती लिखो 'स' में छोटे 'उ' की मात्रा 'सु' ,'न' में छोटी 'इ' की मात्रा 'नि' ,'त' में बड़े 'आ' की मात्रा 'ता', तो मंगलेश ने "सुनिता" लिखा। इसी प्रकार सभी बच्चों को अक्षर और मात्रा शायद समझ में आ रही थी।

\- - - - - - -

एक कहानी पढ़कर सुनाई, 'शोर मचा जंगल में'। प्रत्येक पन्ने पर जानवरों के जो नाम आते गए मैं उन्हें बोर्ड पर लिखती जाती। दूसरा पन्ना पढ़ने से पहले बच्चों से बोर्ड पर लिखे नाम दोहराने को कहती कि .... किसने जंगल में खेलकूद कर शोर मचाया? मैंने बोर्ड पर

लिखे हाथी पर उंगली रखी तो बच्चों ने पहचान कर पढ़ा — हाथी ने।

अब बहनजी हिरण....

इसी प्रकार बार-बार दोहराने से बच्चे पहचान गए कि हाथी कहां लिखा है तो हिरण, बंदर आदि कहां।

बच्चों को बार-बार बोर्ड पर लिखे शब्दों की ओर देखने के लिए कहा, "भैया देखते जाओ, अपन नाम लिखते जा रहे हैं कि कौन शोर मचा रहा है। बाद में इनको पकड़ कर पिटाई करेंगे।"

"बहनजी खरगोश लिखो" - बच्चे मुझे बताते भी जाते - वो हल्ला मचा रहा था। ...... कहानी समाप्त हुई।

बच्चे बोले, "बहनजी अब इनको पीटो।" मैंने कहा अच्छा चलो ..... बच्चों की दो-दो की टोली बनाकर हाथी, हिरण, खरगोश और बंदर बनाए। एक बच्चा बना शेर। शेर ज़ोर से दहाड़ा - - - सभी हाथी, हिरण, खरगोश भागे। खूब भगदड़ मची कमरे में। बच्चों को काफी मज़ा आया। फिर सबसे पूछा, "तुम क्या बने थे तख्ता पर लिखा है, उंगली रखकर बताओ।" जिस-जिस ने बता दिया वे छूट गए और जो नहीं बता पाए वे अलग हो गए। मैंने कहा "अब इनकी पिटाई होगी, यही शोर मचा रहे थे जंगल में।" उन्हें गोल-गोल घुमाया। सभी बहुत खुश हुए। खूब मज़ा आया। बच्चों ने तख्ते पर लिखे शब्द काफी हद तक ध्यान में रखे।

नोट : मैंने अनुभव किया कि दो दिन पहले जो शब्द कार्ड से दस बार लिखवाने के बाद भी बच्चे नहीं पहचान पाए थे, वे सब कहानी में शब्दों को बोर्ड पर लिखकर दोहराते जाने से आसानी से बताने लगे। बहुत देर बाद भी बीच में से पूछने पर कि बंदर कहां लिखा है ममता ने झट से बता दिया।

27 सितम्बर 1991

आज सभी के लिए पोस्टकार्ड ले गई थी। ये पोस्टकार्ड फाइन के पैसों से खरीदे थे। मैंने स्कूल में यह नियम बना दिया है कि यदि स्कूल नहीं आते हो तो आवेदन पत्र भेजो अन्यथा 50 पैसे फाइन दो या फिर कक्षा के आसपास की सफाई करो। इसी फाइन का एक रुपया जमा हुआ था। आठ पोस्टकार्ड एक रुपए बीस पैसे के आए। उन पर बच्चों ने मास्साब को चिट्ठी लिखी। उनसे कहा, "तुम्हें जैसा लगे लिखो।" बच्चों ने चिट्ठी, वो भी पोस्टकार्ड पर, पहली बार लिखी। बहुत खुश हैं, सभी ने अच्छी चिट्ठी लिखी।

एक अक्टूबर 1991

दीर्घ अवकाश के बाद मोतियों से बच्चों को इकाई-दहाई सिखाने की गतिविधि कराई - दस मोती की कितनी माला है? ...बहनजी एक .....अच्छा अब पट्टी पर एक लिख लो। अब देखो खुले मोती कितने हैं .....बहनजी पांच। अब एक दहाई के पीछे पांच लिख लो। ये हो गए 15 – दस और पांच ....पंद्रह। अब दो माला यानी कितने मोती हो गए .....बहनजी 20 ..... अब कितनी माला है .....बहनजी दो - हां ये हो गए 20 - अब दो माला और दो मोती को लिखेंगे 22 यानी दो दहाई और दो इकाई।

नोट : *पता नहीं गलती कहां हुई बताने में। मेरा उद्देश्य था कि उन्हें 15, 22, 32 या इसी प्रकार के 10 से 30 तक के बीच के अंक लिखना आ जाएं। कुछ खास जमा नहीं, बच्चे शीघ्र ही ऊब गए थे। मुझे भी लगा कि इस प्रकार बताने में कहीं गड़बड़ है।*

कक्षा दो में बच्चों को इकाई और दहाई समझाने के लिए किताब में एक गतिविधि इस प्रकार की है जिसमें बच्चे अपने आप मिट्टी के मोती बनाते हैं और फिर एक-एक गिनकर दस-दस मोतियों को धागे में पिरोकर माला बनाते हैं। दस मोतियों की एक माला को एक दहाई और बचे हुए खुले मोतियों को इकाई मानते हैं - इस तरह इकाई-दहाई की समझ को बच्चों में उभारने का प्रयास इस प्रकार की गतिविधि में किया जाता है।

शनिवार को मैंने कहानी सुनाई थी। जिन बच्चों से पूछा उन्होंने पूरी कहानी बताई। बीच-बीच में यदि वे भूलते तो अन्य बच्चे बताने लगते कि पहले "थे और हे बे।"

मोहन ने कहा, "बहनजी मैं चुनमुन चूहा की कहानी गोंडी में बताऊंगा।" उसने गोंडी में कहानी शुरू की। सभी बच्चों को बहुत मज़ा आ रहा था। सब खूब हंस रहे थे। जब मोहन बीच में कुछ भूल जाता तो कक्षा दो की ममता उसे गोंडी में ही आगे की कहानी बताती। मुझे भी बहुत अच्छा लगा - जैसे "चल मेरी ढोलक ढम्मक ढुम, नानी के घर चलें हम और तुम" - इसका गोंडी में अनुवाद है "दा नवा डोलक उम्मक डुम, नानी ना रोन चले इम्मा न नीवा।"

नोट : *इस प्रकार ये पुरानी कहानी आज बिल्कुल नई ही बन गई। मुझे नहीं पता था कि प्रत्येक बच्चा पूरी कहानी हिंदी से गोंडी में परिवर्तित करके क्रम से लगातार बता सकता था। यह मेरा पहला नया अनुभव था, पर काफी बढ़िया रहा।*

****

* गंगा गुप्ता वर्तमान में सिवनी जिले की घंसौर तहसील की प्राथमिक शाला में कार्यरत हैं।
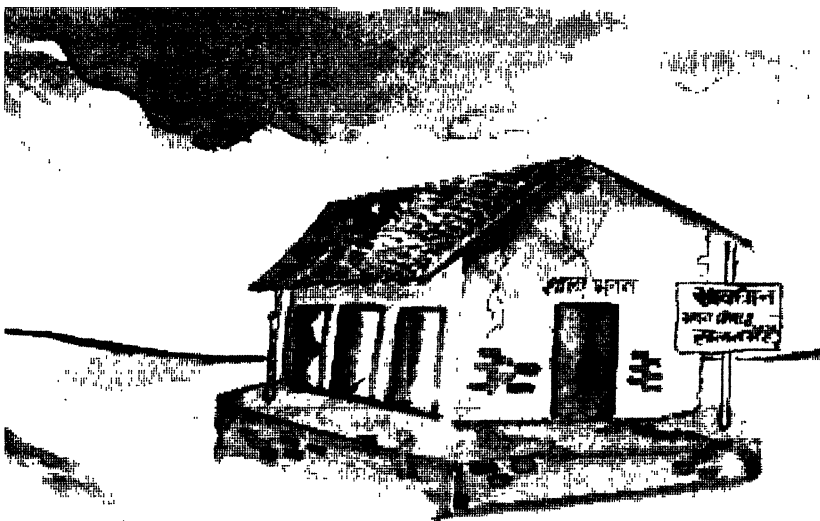
आओ स्कूल - स्कूल खेलें

वर्षा पूरे ज़ोर पर थी। शाला से गांव की ओर वाला नाला तेज़ी से बह रहा था और नगर का रास्ता नदी रोके बैठी थी। भारत का राष्ट्रनिर्माता अपने देश की दौलत को लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पत्तरे पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था। बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो बारिश थमने का इंतज़ार ही चल रहा था। बिजली की चमक व ज़ोर की गड़गड़ाहट तड़तड़ाहट के साथ एक सामूहिक सिहरन दौड़ जाती थी। भवन हिल जाता था। शिक्षक को प्रथम बार ऐसा लग रहा था कि कहीं पी.डब्ल्यू.डी. वाले ही सच न हो जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर एक पालक शाला में आ धमका। आते ही उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे—"मास्साब, कुछ अक्ल है या नहीं, इतनी बारिश में स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का क्या होगा?"

संदर्भ

वार्षिक सदस्यता

एवं

उपहार

. . . . रुपए

क ड्राफ्ट या

ो भेजें। चेक

हस्ताक्षर

ला।

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

प्रश्न उठ गया तो हमारे ... जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

आओ स्

वर्षा पूरे ज़ोर पर थ
से गांव की ओर व
तेज़ी से बह रहा था
का रास्ता नदी रोके बैठी थी
राष्ट्रनिर्माता अपने देश की
लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित
शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना
पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और
पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पत्तरे
पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा
बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था।
बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी
समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो

सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें:
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

कि कहीं पी.डब्ल्यू.डी. वाले ही सच न हो जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर एक पालक शाला में आ धमका। आते ही उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे—"मास्साब, कुछ अक्ल है या नहीं, इतनी बारिश में स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का क्या होगा?"

संदर्भ वार्षिक सदस्यता

नाम . . . .

पता . . . .

. . . .

. . . .

. . . .

पिन . . . .

सदस्यता शुल्क . . . . **वर्ष के लिए** . . . . **रुपए**

(वार्षिक सदस्यता शुल्क 35/- रुपए, डाकखर्च मुफ्त। बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद के नाम से भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।)

हस्ताक्षर

ल॰॥

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

प्रश्न उठ गया तो हमारे मन्त्री क्या जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

उपहार

अगर आपके किसी अन्य साथी/संस्था की संदर्भ के बारे में र
है तो उनका पता यहां लिख भेजिए। 'संदर्भ' की एक उपहार प्र
उन्हें तुरन्त भेजी जाएगी ताकि वे चाहें तो उसे देखकर बाद
'संदर्भ' का वार्षिक सदस्य बन सकते हैं।

नाम ....

पता ....

....

....

पिन ....

हस्ताक्ष

का र
राष्ट्र
लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पत्तरे पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था। बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो

कि कहा पी.डब्ल्यू.डी. वाले हो तय न हो जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर एक पालक शाला में आ धमका। आते ही उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे–"मास्साब, कुछ अक्कल है या नहीं, इतनी बारिश में स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का क्या होगा?"

मास्साब पहले ही भरे हुए थे, बोले – "आपको अपने एक बच्चे की चिन्ता है। मैं तो पांच घर छोड़ आया हूं, यदि मुझे कुछ हो गया तो उनका क्या होगा?"

पालक ने आगे कुछ नहीं कहा। गीली बीड़ी को काफी प्रयास के बाद सुलगाकर वह न टपकने वाला स्थान देखकर बैठ गया और बीड़ी के कश खींचने लगा। बच्चे को उफनते नाले के पार ले जाना अभी उसके बस का नहीं था। बीड़ी के हर कश के साथ वह सरकार को गाली देने लगा। शिक्षक के लिए भी अब समय काटना कठिन होता जा रहा था।

बिजली की चमक के साथ ही शिक्षक के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा। उसने चिल्लाकर कहा – "बच्चो आओ हम स्कूल-स्कूल खेलें।" बच्चे विस्मित! पालक चकित! पालक बोला, "बैठने की जगह नहीं है? फिर खेल की मास्साब को क्या सूझी?"

मास्साब बोले, "इस खेल का यही सही माहौल है। इसे ही स्कूल कहते हैं।" मास्साब का जोश व ज़ोरदार आवाज़ सुनकर बच्चे अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

मास्टर तैश में बोला, "तुम चुप रहो जी, कुछ नहीं समझते। जब हमारे डी.ई.ओ. साहब से उनका बड़ा साब पूछेगा तो कौन जवाब देगा? यहां कमरों या भवनों की वृद्धि नहीं छात्रवृद्धि पूछी जाती है। चुपचाप बैठकर खेल देखो।"

"हां, पूरन तू बड़ा साब, पिला दोई के दाँट। कुछ नहीं करते हो? तुम्हारा मासिक पत्रक समय पर क्यों नहीं आता? स्कालरशिप की जानकारी नहीं भेजी? मवेशी गिनने का छोटा-सा काम तुमसे नहीं हुआ? निरोध के पैकेट का बंटवारा फर्ज़ी किया? और पैकेट दुकान पर बेच दिए? शर्म नहीं आती?"

गोपीकिशन ने उत्साही मन से खेल में भाग लेने के आशय से पूछा, "मास्साब, मैं मास्टर बनी ने पढ़ऊं?" मास्साब बोले, "बैठ जा मूर्ख। स्कूल में पढ़ाई की बात करता है। इतना भी नहीं मालूम?"

पालक ने दूसरी बीड़ी सुलगाते हुए कहा, "जब खेल खिंल इ रिया हो तो नानक्यां ने पढ़वा भी दो।"

मास्साब पुनः चिल्लाए, "तुम चुप रहो जी। कुछ समझते नहीं। विधानसभा में प्रश्न उठ गया तो हमारे मंत्रीजी क्या जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

है। ये किसी ने पूछा कि सबकी औलाद सुधारने का ठेका लेने वाले मास्टर की औलाद क्यों बिगड़ रही है? ये तो पूछा कि छात्रवृद्धि अभियान का लक्ष्य पूरा क्यों नहीं हुआ? पर ये नहीं पूछा कि उन आने वालों को बैठाएंगे कहां। ये तो पूछा कि छात्रों को प्रवेश हेतु मना क्यों किया? पर यह नहीं पूछा कि उन्हें पढ़ाएंगे कौन?"

रतिराम के सिर पर चूने वाले पानी ने धार का रूप ग्रहण कर लिया था। वह और उसके पास खड़े साथी पूरे भीग गए थे। कमरे में कहीं सूखी जगह नहीं थी। उसने बरामदे के एक कोने की ओर इशारा करते हुए पूछा, "मास्साब, हम वहां चले जाएं? यहां भीगा है।" मास्साब खुश होकर बोले, "हाँ, हाँ, तुम उस कोने में जाकर अपना लिंक स्कूल खोल लो। अपने साथियों को भी ले जाओ।"

पालक ने सहजता से पूछा, "मास्साब, ये लिंक स्कूल कई होवे?"

मास्साब ने उतनी ही सहजता से समझाया, "ये आफत भगाओ, मूरख बनाओ योजना है। जब तालाब में उफान अई जाय तो नाको खोली ने पानी निकाल दे ने जिनका खेत में पानी घुसे उनके कई दे कि हम सिंचाई के लिए नहर दे रहे हैं।"

बारिश थमने का नाम ही नहीं लेती थी। नाला उफान पर था। बिजली चमक रही थी।

जर्जर पाठशाला भवन गिरने की घड़ी का इंतज़ार कर रहा था। शाला भवन में पानी भरने लगा था पर स्कूल-स्कूल खेल जारी था। फिर नई पद्धति। फिर नई योजना। पुनः पुनः प्रयोग। हर असफलता को सफलता निरूपित करने की विलक्षण प्रतिभा के साथ। बस, खेल जारी है।

(यतीश कानूनगो - शिक्षक के रूप में लंबे अनुभव के बाद अब ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, देवास में कार्यरत)

दुनिया का नक्शा

● यमुना सनी

कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको ऐसा लगा कि नक्शा ठीक वैसा नहीं है जैसा ग्लोब में दिखाई देता है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है।

प्रागैतिहासिक काल में जब लिखने का चलन भी नहीं था, तब से ही मनुष्य अपने आसपास के दृश्यों के चित्र बनाने लगा था। अनेक प्रारम्भिक नक्काशियों में न केवल आसपास के भूभागों या नदी-नालों का चित्रण है बल्कि दूर-दराज़ के भूभागों और समूची दुनिया की परिकल्पना का भी चित्रण है। ये परिकल्पनाएं आमतौर पर यह मानकर चलती थीं कि पृथ्वी तश्तरी जैसी चपटी है तथा चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

चपटी धरती की यह धारणा पन्द्रहवीं सदी तक आते-आते टूटी। उन्हीं दिनों यूरोप के व्यापारी और नाविक पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों को खोजने व उनके बारे में सही जानकारी पाने के लिए यात्राएं करने लगे। जैसे-जैसे पृथ्वी और विभिन्न देशों की जानकारी बढ़ी वैसे-वैसे नक्शों का बहु-आयामी उपयोग होने लगा। इनमें अनजाने देशों की खोज से प्राप्त जानकारी, आने-जाने के रास्ते आदि दर्शाए जाने लगे। इसी कारण जब पुर्तगाली नाविक समुद्री यात्राएं करके अपनी जानकारी बढ़ा रहे थे तब वेनिस जैसे उत्तरी इटली के अनेक राज्य अपने जासूसों को पुर्तगाली राजधानी लिस्बन भेजा करते थे ताकि वे वहाँ बन रहे नक्शों की प्रतियाँ चुराकर ला सकें। नक्शा यूरोपीय साम्राज्य निर्माण का एक प्रमुख औज़ार साबित हुआ। आज हम जिस विश्व मानचित्र का बहुत ज़्यादा उपयोग करते है, उससे साम्राज्यवादकालीन

है। ये किसी ने पूछा कि सबकी औलाद सुधारने का ठेका लेने वाले मास्टर की औलाद क्यों बिगड़ रही है? ये तो पूछा कि छात्रवृद्धि अभियान का लक्ष्य पूरा क्यों नहीं हुआ? पर ये नहीं पूछा कि उन आने वालों को बैठाएंगे कहां। ये तो पूछा कि छात्रों को प्रवेश हेतु मना क्यों किया? पर यह नहीं पूछा कि उन्हें पढ़ाएंगे कौन?"

रतिराम के सिर पर चूने वाले पानी ने धार का रूप ग्रहण कर लिया था। वह और उसके पास खड़े साथी पूरे भीग गए थे। कमरे में कहीं सूखी जगह नहीं थी। उसने बरामदे के एक कोने की ओर इशारा करते हुए पूछा, "मास्साब, हम वहां चले जाएं? यहां भीगा है।" मास्साब खुश होकर बोले, "हाँ, हाँ, तुम उस कोने में जाकर अपना लिंक स्कूल खोल लो। अपने साथियों को भी ले जाओ।"

पालक ने सहजता से पूछा, "मास्साब, ये लिंक स्कूल कई होंवे?"

मास्साब ने उतनी ही सहजता से समझाया, "ये आफत भगाओ, मूरख बनाओ योजना है। जब तालाब में उफान अई जाय तो नाको खोली ने पानी निकाल दे ने जिनका खेत में पानी घुसे उनके कई दे कि हम सिंचाई के लिए नहर दे रहे हैं।"

बारिश थमने का नाम ही नहीं लेती थी। नाला उफान पर था। बिजली चमक रही थी।

जर्जर पाठशाला भवन गिरने की घड़ी का इंतज़ार कर रहा था। शाला भवन में पानी भरने लगा था पर स्कूल-स्कूल खेल जारी था। फिर नई पद्धति। फिर नई योजना। पुनः पुनः प्रयोग। हर असफलता को सफलता निरूपित करने की विलक्षण प्रतिभा के साथ। बस, खेल जारी है।

(यतीश कानूनगो - शिक्षक के रूप में लंबे अनुभव के बाद अब ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, देवास में कार्यरत)

दुनिया का नक्शा

• यमुना सनी

कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको ऐसा लगा कि नक्शा ठीक वैसा नहीं है जैसा ग्लोब में दिखाई देता है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है।

प्रागैतिहासिक काल में जब लिखने का चलन भी नहीं था, तब से ही मनुष्य अपने आसपास के दृश्यों के चित्र बनाने लगा था। अनेक प्रारम्भिक नक्काशियों में न केवल आसपास के भूभागों या नदी-नालों का चित्रण है बल्कि दूर-दराज़ के भूभागों और समूची दुनिया की परिकल्पना का भी चित्रण है। ये परिकल्पनाएं आमतौर पर यह मानकर चलती थीं कि पृथ्वी तश्तरी जैसी चपटी है तथा चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

चपटी धरती की यह धारणा पन्द्रहवीं सदी तक आते-आते टूटी। उन्हीं दिनों यूरोप के व्यापारी और नाविक पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों को खोजने व उनके बारे में सही जानकारी पाने के लिए यात्राएं करने लगे। जैसे-जैसे पृथ्वी और विभिन्न देशों की जानकारी बढ़ी वैसे-वैसे नक्शों का बहु-आयामी उपयोग होने लगा। इनमें अनजाने देशों की खोज से प्राप्त जानकारी, आने-जाने के रास्ते आदि दर्शाए जाने लगे। इसी कारण जब पुर्तगाली नाविक समुद्री यात्राएं करके अपनी जानकारी बढ़ा रहे थे तब वेनिस जैसे उत्तरी इटली के अनेक राज्य अपने जासूसों को पुर्तगाली राजधानी लिस्बन भेजा करते थे ताकि वे वहाँ बन रहे नक्शों की प्रतियाँ चुराकर ला सकें। नक्शा यूरोपीय साम्राज्य निर्माण का एक प्रमुख औज़ार साबित हुआ। आज हम जिस विश्व मानचित्र का बहुत ज़्यादा उपयोग करते है, उससे साम्राज्यवादकालीन

चित्र 1. सामान्य दुनिया का नक्शा

धारणाओं को बल मिलता है। विश्व के उस मानचित्र को देखें जिसका व्यापक उपयोग होता है। (चित्र 1)

इस मानचित्र का उपयोग पाठ्यपुस्तकों, दीवार-मानचित्र, टीवी, आदि में आमतौर पर होता है। इसका इतना ज़्यादा प्रचलन हुआ है कि हमारी दुनिया की धारणा इसके अनुरूप ही ढल गई है।

यह नक्शा सन् 1569 में हॉलैण्ड के नक्शा-नवीस मर्केटर के प्रक्षेपण पर आधारित है। मर्केटर तत्कालीन समुद्री यात्राओं के उपयोग के लिए नक्शा बनाना चाहता था। समुद्री मार्ग तय करने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते समय दिशा का सही-सही ज्ञान होना आवश्यक था। मर्केटर के नक्शे की खासियत यही थी कि उससे लोग जगहों की दिशा सही-सही मालूम कर सकते थे। लेकिन इस नक्शे में भूभागों के आकार सम्बन्धी अनेक विसंगतियाँ हैं।

उदाहरण के लिए - इस नक्शे में अफ्रीका उत्तरी अमेरिका से छोटा दिखता है, जबकि वास्तव में अफ्रीका सवा गुना बड़ा है। ऐसे कुछ विसंगतियों को अगले पृष्ठ पर आप देख सकते हैं।

परिणामस्वरूप सभी उत्तरी भूभाग अपने वास्तविक आकार से काफी बड़े दिखाई देते हैं। इत्तेफाक से यह गोरों के देश हैं। यहीं से निकलकर उन्होंने खोजी यात्राएं कीं, दूसरे देशों पर अपना आधिपत्य जमाया और अपना साम्राज्य फैलाया।

उतर
अमेरिका
अफ्रीका
स्कैन्डिनेविया
भारत
यूरोप
दक्षिण
अमेरिका

मर्केटर के नक्शे में जिन देशों को तुलनात्मक रूप से छोटा दर्शाया गया है (जैसे भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण पूर्वी एशिया, अफ्रीका, मध्य एवं दक्षिण अमेरिका आदि) वे यूरोपीय व अमरीकी साम्राज्य के अधीन रहे हैं। एक ओर इस नक्शे में साम्राज्यवादी देशों के आकार बढ़ा-चढ़ाकर दिखाए गए हैं और दूसरी ओर उपनिवेश के देशों के आकार छोटे।

इस तरह मर्केटर जैसे नक्शे संसार की एक विकृत छवि छोड़ते हैं और इसके साथ-साथ उन विभिन्न देशों व लोगों के तुलनात्मक महत्व की एक खास धारणा भी बनाते हैं। हम मर्केटर के नक्शे के इतने आदी हो गए हैं कि दूसरे नक्शे चाहें वे ज़्यादा सही हों, हमें सही नहीं लगते। उदाहरण के लिए 1973 में प्रस्तुत किया गया अर्नो पीटर्स का मानचित्र लें। (चित्र 2)

पीटर्स का प्रयास था कि हम विश्व के विभिन्न देशों व लोगों को ज़्यादा सही संतुलित नज़रिए से देख पाएं। मर्केटर और पीटर्स के नक्शों की तुलना आप खुद करके इस अंतर को पहचान सकते हैं। इसमें अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, दक्षिण एशिया आदि के आकार पर
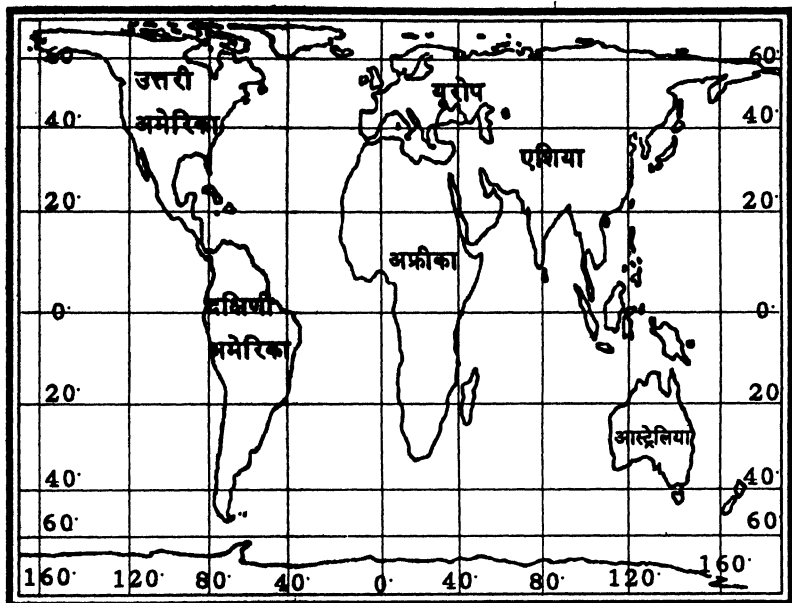
चित्र 2. अर्नो पीटर्स का बनाया नक्शा

गौर करें। इस (पीटर्स) मानचित्र में सभी महाद्वीपों के आकार (साइज़) उसी अनुपात में हैं जिस अनुपात में ग्लोब पर होते हैं। अतः अलग-अलग देशों के क्षेत्रफल की तुलना आप सही ढंग से कर सकते हैं। मर्केटर के नक्शे में इस तरह की तुलना करने पर गलत निष्कर्ष निकलेंगे। इस संदर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक होगा कि आखिर मर्केटर ने ऐसा विकृति युक्त नक्शा कैसे बनाया?

विश्व के नक्शे

नक्शा बनाने में प्रमुख समस्या यह है कि तीन आयामी गोलाकार ग्लोब को सपाट दो आयामी कागज़ पर कैसे उतारें। इसके लिए पुराने समय में कांच के ग्लोब की मदद ली जाती थी। इनकी सतह पर भूखंडों की आकृतियों को उकेर दिया जाता था। फिर ग्लोब के बीच में बत्ती जलाई जाती थी। बाहर किसी सतह पर उसमें उकेरे हुए भू-भाग की परछाई पड़ती। जिस सतह

पर यह परछाई पड़ती वहां इन आकृतियों को उतारा जाता था। अलग-अलग आकृति के कागज़ को सतह के रूप में उपयोग किया जा सकता था - बेलनाकार, शंक्वाकार, समतल कागज़ आदि। (चित्र 3)

भू-भाग की आकृतियों को बनाने के बाद इन कागज़ों को खोलकर फैलाया जा सकता था। ताकि सपाट नक्शा बने। यही तरीका था गोलाकार पृथ्वी का नक्शा सपाट कागज़ पर बनाने का। नीचे तीनों तरह की सतहों से प्राप्त नक्शे दिखाए गए हैं। आप देख सकते हैं कि प्रत्येक नक्शा दूसरे नक्शों से काफी भिन्नता लिए हुए है।

गोलाकार पृथ्वी की सतह पर बनी आकृतियों की छवि सपाट कागज़ पर उतारने को मानचित्र-प्रक्षेपण कहते हैं। आजकल इस काम के लिए काँच के बने ग्लोब का उपयोग नहीं होता। इसके बदले में ग्लोब पर बने संदर्भ जाल (रेफरेन्स ग्रिड) को सपाट कागज़ पर उतारा जाता है, जिसके आधार पर नक्शे बनाए जा सकते हैं।

चित्र 3 : विभिन्न सतहों पर बने नक्शे

क) बेलनाकार कागज़ पर

ख) शंकु आकार कागज़ पर
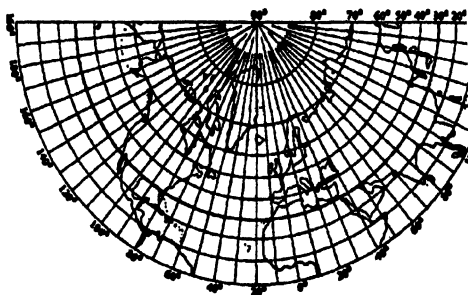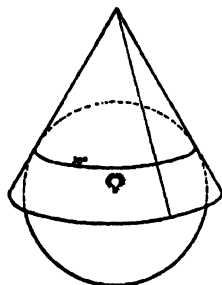
'संदर्भ ग्रिड'

हम सब ग्राफ कागज़ के ग्रिड (जाल) से तो परिचित होंगे; इसमें दो संदर्भ रेखाएं x तथा y होती हैं। जो एक ही बिन्दु '0' से शुरू होती हैं। ग्रिड के अंदर किसी बिन्दु की स्थिति को इन दो संदर्भ लाईनों से दूरी के हिसाब से बताया जाता है। (चित्र 4) जैसे इस चित्र में जगह 'क' की स्थिति आधार बिन्दु '0' से 30 इकाई पूर्व और 20 इकाई उत्तर पर है। नक्शों में इस प्रकार के ग्रिड बनाने से किसी स्थान की स्थिति आसानी से इन लकीरों की मदद से मालूम की जा सकती है।
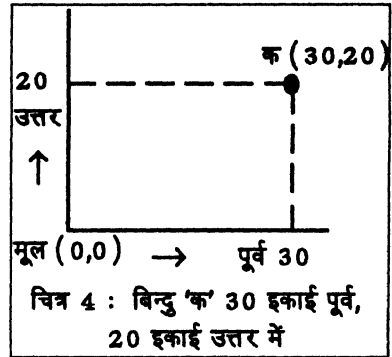
चित्र 4 : बिन्दु 'क' 30 इकाई पूर्व, 20 इकाई उत्तर में
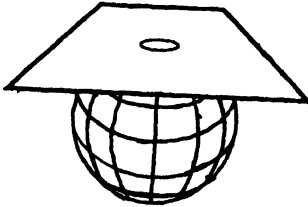
ग) सपाट सतह पर

ग्राफ पर सभी चौकोन समान क्षेत्रफल के होते हैं। यह केवल समतल कागज़ पर संभव है; गोलाकार ग्लोब पर नहीं। ग्लोब पर जगहों की स्थिति दर्शाने के लिए एक उचित विधि की ज़रूरत थी जो गोलाकार सतह पर खरी उतरे। इसके लिए दो तरह की घुमावदार लकीरें ग्लोब पर खींची जाती हैं। यही अक्षांश व देशान्तर रेखाएं हैं। ग्लोब पर किसी भी स्थान की स्थिति को इन लकीरों के संदर्भ में बताया जाता है। किसी भी स्थान की स्थिति को वहाँ से गुज़रने वाली इन दो रेखाओं की मदद से दर्शाया जाता है।
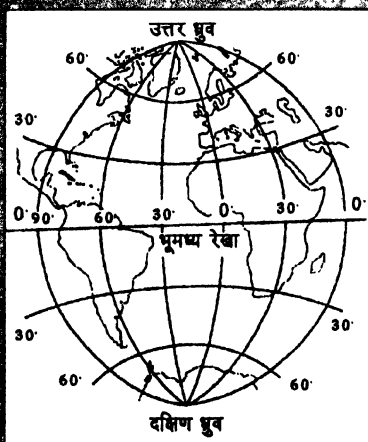
नक्शा - नवीसी में अक्षांश - देशांश रेखाएं

मानचित्र प्रक्षेपण का केंद्रीय मुद्दा यह है कि ग्लोब पर बनी अक्षांश देशांश रेखाओं के जाल को समतल कागज़ पर कैसे उतारा जाए। एक बार हम इस जाल को कागज़ पर उतार लें तो उसके आधार पर भूभागों को दर्शाया जा सकता है। नक्शे में उन्हें उतारने के तीन बुनियादी तरीके हैं - बेलनाकार, शंकु आकार और समतल। इनके बीच के अंतर आप चित्र 3 में देख सकते हैं। इनमें आप तीन अलग-अलग तरह के ग्रिड देख सकते हैं। अलग-अलग प्रक्षेपण से अलग-अलग तरह के नक्शे कैसे बन जाते हैं इनसे स्पष्ट हो जाता है।

चाहे वह बेलन हो या शंकु हो या समतल, तीनों ग्लोब के किसी एक खास हिस्से को ही छूते हैं (देखिए चित्र 3)। उसी वृत्त पर वह नक्शा ग्लोब के अनूरूप बनेगा। उस वृत्त से दूर जाने पर नक्शे में विकृतियां बढ़ती जाएंगी। बेलन भूमध्य रेखा को छूता है तो इस प्रक्षेपण में भूमध्यरेखीय प्रदेश ही सही अनुपात में बनेंगे। ध्रुव के पास अधिक विकृति होगी। शंकु लगभग 40 डिग्री अक्षांश को छूता है तो वह हिस्सा ग्लोब के अनुरूप होगा। सपाट सतह पर बनाया नक्शा ध्रुव पर ग्लोब को छूता है। उसमें ध्रुवीय हिस्सा सही बन सकेगा।

नक्शे में विकृतियां

आप इस बात को समझ रहे होंगे कि समतल कागज़ पर बना नक्शा किसी न किसी रूप में विकृत होगा ही। अब सवाल है कि आप किस काम के लिए नक्शा बना रहे हैं और उसके लिए कौन-सी विकृति आपको स्वीकार्य है। अपनी-अपनी ज़रूरतों के अनुसार इन तीनों प्रक्षेपणों को तरह-तरह से संशोधित करके विश्व के नक्शे बनाए जाते हैं।

इनमें हर एक की अपनी उपयोगिता है और अपनी सीमाएं हैं। कुछ नक्शे सही क्षेत्रफल दर्शाते हैं, तो कुछ सही आकृति बताते हैं। कुछ सही दिशा बताते हैं, तो कुछ सही दूरियां बताते हैं। इन सब गुणों को किसी एक ही नक्शे में समाहित कर पाना संभव नहीं हो पाया है। वस्तुस्थिति यह है कि गोले की बातों को समतल कागज़ पर सही-सही दर्शाना असंभव है। अतः पृथ्वी का सही-सही चित्रण ग्लोब पर ही देखा जा सकता है, नक्शों में नहीं।

संतरे के छिलके को एकदम सपाट बनाने की कोशिश करें तो आपको यह बात समझ में आएगी। आज 200 से भी अधिक मानचित्र प्रक्षेपण बनाए जा चुके है। इससे कम-से-कम यह तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मानचित्र की कोई न कोई सीमा ज़रूर है।

मर्केटर नक्शे की विकृतियां

अब हम लौटते हैं मर्केटर के नक्शे पर। यह नक्शा बेलनाकार प्रक्षेपण का ही बदला हुआ एक रूप है। हमने पहले ही बताया था कि मर्केटर समुद्री यात्रा के उपयोग के लिए नक्शा बना रहा था। वह एक जगह से दूसरी जगह जाने की सही दिशा बताना चाहता था। साथ ही वह चाहता था कि भूखण्डों की आकृतियां वैसी ही दिखें जैसी वे वास्तव में हैं।

समानान्तर देशांश

हम जानते हैं कि ग्लोब पर देशांश रेखाएं ध्रुवों पर जाकर मिलती हैं। यानी वे समानान्तर नहीं हैं। भूमध्य रेखा पर दो देशांश रेखाओं के बीच की दूरी सबसे अधिक होती है। बेलनाकार प्रक्षेपण में देशांश रेखाएं समानान्तर हो जाती हैं। मर्केटर ने भी अपने नक्शे में देशांश रेखाओं को समानान्तर दिखाया। (देखिए चित्र 1) इस प्रकार दो देशांशों के बीच की दूरी सभी स्थानों में एक सी हो गई। ध्रुव पर भी और भूमध्य रेखा पर भी। यानी उत्तरी ध्रुव जो वास्तव में मात्र एक बिन्दु है नक्शे में भूमध्य रेखा जितनी लंबाई वाली रेखा हो गया। इस तरह नक्शे में हम जैसे-जैसे भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण दिशा में बढ़ते हैं विकृति बढ़ती जाती है। लेकिन जैसे आप खुद जांच कर देख सकते हैं सारी जगहें अपनी सही दिशा में बनी हैं। मर्केटर के नक्शे में बने भारत से जापान की दिशा की तुलना चित्र-3 के शंकु आकार प्रक्षेपण (ख) और सपाट सतह नक्शे (ग) से कीजिए।

चूंकि ध्रुवों की ओर देशांश रेखाओं के बीच की दूरी बढ़ती जाती है इसलिए वहां के भूखण्डों की आकृति पूरब-पश्चिम दिशा में खिंचकर बढ़ जाती है। इस कारण ध्रुवों के पास आकृतियां वैसी नहीं बनेंगी जैसी कि वे वास्तव में हैं। अब नक्शे में उत्तरी अक्षांशों में भूखण्ड बहुत ज़्यादा चौड़े हो रहे थे। (देखिए चित्र 5) चूंकि नक्शे में देशांशों के बीच की दूरी बढ़ रही थी इसलिए मर्केटर ने इस विकृति को ठीक करने के लिए उतनी ही मात्रा में अक्षांशों के बीच की दूरी भी बढ़ा दी।

वास्तव में ग्लोब पर सभी अक्षांश रेखाओं के बीच की दूरी एक सी होती है। लेकिन जैसे-जैसे मर्केटर नक्शे में हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ बढ़ते हैं अक्षांशों के बीच की दूरी भी बढ़ती जाती है (चित्र 6)। इस प्रकार प्रत्येक भूखंड की लंबाई चौड़ाई का अनुपात वही रहा जैसा ग्लोब पर है। भूखंडों की आकृतियां भी सही बनीं लेकिन ध्रुवों के पास उनका आकार (साईज़) खूब बढ़ गया। केवल भूमध्य रेखा के पास नक्शा सही रहा।
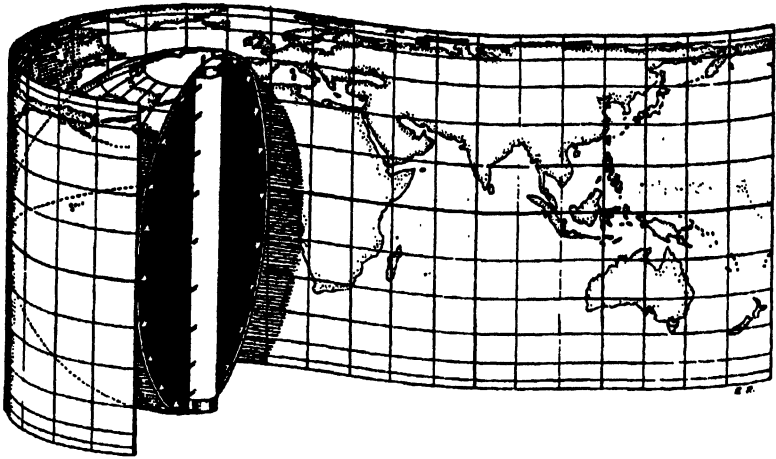
चित्र 5 : बेलनाकार प्रक्षेपण में देशांश रेखाएं समांतर बनाए जाते हैं। इस कारण ध्रुवों के पास आकृतियां पूरब और पश्चिम की ओर खिंच जाती हैं। इस बात पर गौर करें कि ग्लोब के अंदर की रोशनी एक बिंदु से नहीं बल्कि एक पूरी रेखा से निकलती है।
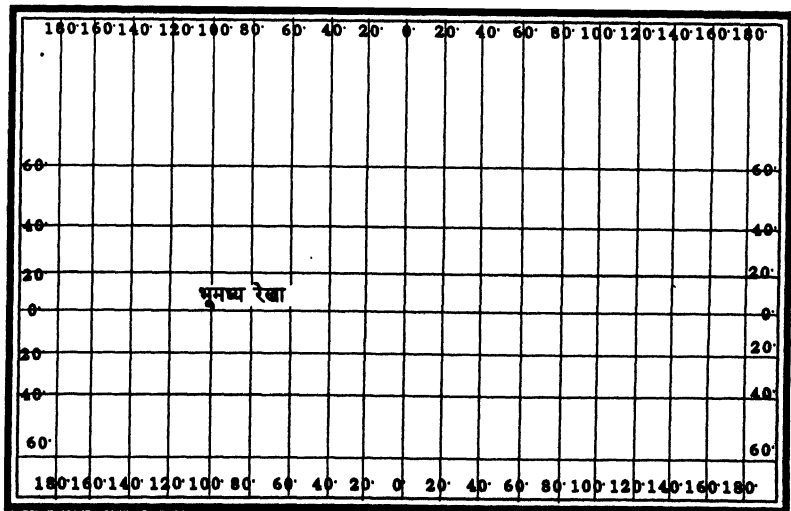
चित्र 6 : मर्केटर प्रक्षेप का संदर्भ ग्रिड

अर्नो पीटर्स जैसे नक्शा-नवीसों ने दुनिया के पारंपरिक नक्शों के क्षेत्रफल की विसंगतियों की ओर ध्यान खींचा है। आप देखेंगे की पीटर्स के नक्शे में भी देशांश रेखाएं समानान्तर बनी हैं। उसके कारण उत्तरी भूखंडों का क्षेत्रफल जो बढ़ा उसे ठीक करने के लिए पीटर्स ने उत्तरी अक्षांशों के बीच की दूरी को उसी अनुपात में कम किया। (मर्केटर ने आकृति ठीक करने के लिए अक्षांशों के बीच की दूरी बढ़ाई थी) इस प्रकार महाद्वीपों के क्षेत्रफल सही अनुपात में बने। अतः इस नक्शे में अलग-अलग देशों के क्षेत्रफल की सही तुलना की जा सकती है लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ दूसरी विकृतियां इस नक्शे में आ गईं। इस नक्शे में महाद्वीपों की आकृतियां विकृत हो गईं। जो भी हो अर्नो पीटर्स जैसे नक्शा-नवीसों के प्रयास से हमें पारंपरिक नक्शों के द्वारा छोड़ी गई दुनिया की छवि पर पुनर्विचार करने का अवसर मिला।

(यमुना सनी - एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध, होशंगाबाद फील्ड सेंटर में कार्यरत)

दुनिया उल्टी सी...

हम बच्चों को लगातार यही बताते हैं कि नक्शे में हमेशा उत्तर दिशा ऊपर की ओर होती है। लेकिन ऐसा होना ज़रूरी तो नहीं है! यह भी एक परंपरा है जिसके पीछे राजनैतिक मतलब छिपे हैं। मध्यकालीन नक्शा-नवीस जब नक्शा बनाते थे तो वे दक्षिण को ऊपर की तरफ दिखाते थे! यहां अरब नक्शा-नवीस अल इदरिसी द्वारा सन् 1154 में बनाया गया नक्शा देखिए। इसमें दुनिया कुछ उल्टी सी दिखती है, है .. न!

ऑक्सीजन से बनी ओजोन

सवाल : ओज़ोन की परत किन गैसों से मिलकर बनी है। यह परत सूर्य से आने वाली ऐसी किरणों को कैसे रोकती है जो हमें नुकसान पहुंचा सकती हैं?

जवाब : यह तो शायद सबको मालूम होगा कि हीरा और ग्रेफाइट दोनों कार्बन के ही अलग-अलग रूप हैं। इसी तरह ओज़ोन और ऑक्सीजन, दोनों ऑक्सीजन के ही रूप हैं। ओज़ोन भी एक तरह की ऑक्सीजन है। ऑक्सीजन में दो परमाणु होते हैं और हम उसे रसायन विज्ञान की भाषा में O_2 संकेत से लिखते हैं। ओज़ोन में ऑक्सीजन के तीन परमाणु होते हैं और उसे O_3 संकेत से लिखा जाता है। ऑक्सीजन का ही एक रूप होते हुए भी ओज़ोन के गुणधर्म ऑक्सीजन से बहुत फर्क हैं – यह तीखी गंधवाली, नीले रंग की गैस है । ओज़ोन विषैली गैस है जो साँस के साथ फेफड़ों तक पहुँच जाए तो बेचैनी पैदा करती है।

ओज़ोन गैस वायुमंडल के समताप मंडल नामक हिस्से में बनती है। पृथ्वी के वायुमंडल को विभिन्न हिस्सों में बांटा गया है। पृथ्वी की सतह से 10 किलोमीटर से 50 किलोमीटर तक के हिस्से को समतापमंडल कहते हैं। इसे
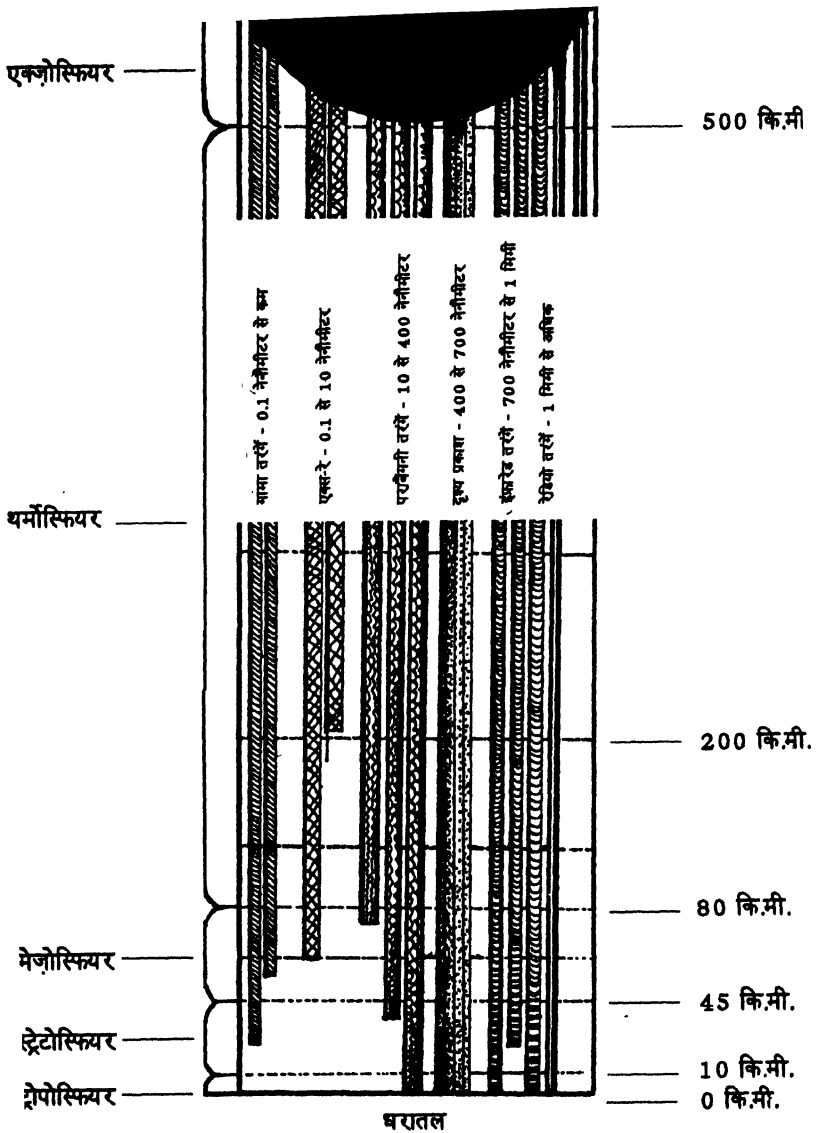
सूर्य का प्रकाश वायुमंडल के विभिन्न स्तरों को पार कर हम तक पहुंचता है। इस प्रकाश में कई तरह की तरंगें होती हैं लेकिन सभी हम तक नहीं पहुंचतीं। वायुमंडल के विभिन्न हिस्से उन्हें वहीं रोक लेते हैं। रेखाचित्र में वही स्थितियां दिखाई गई हैं।

समतापमंडल इसलिए कहते हैं क्योंकि इस पूरे हिस्से में तापमान एक समान रहता है। वायुमंडल के विभिन्न भागों को चित्र में दिखाया गया है। समताप मंडल में ओज़ोन के अलावा और भी गैसें होती हैं। ओज़ोन किसी परत के रूप में नहीं पाई जाती बल्कि यह स्वतंत्र रूप से समताप मंडल में दस से पचास किलोमीटर की ऊंचाई के बीच होती है।

ओज़ोन के बनने की प्रक्रिया भी काफी रोचक है। सूर्य से पृथ्वी तक ऊर्जा विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के ज़रिये पहुँचती है। उसमें अलग-अलग तरंग लम्बाई की किरणें होती हैं। यानी प्रकाश के अलावा और भी बहुत तरह की किरणें होती हैं। जैसे - पराबैंगनी, इनफ्रारेड, क्ष किरणें, गामा किरणें, रेडियो तरंगें आदि। तरंग लम्बाई के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में बांटा गया है।

समतापमंडल में ओज़ोन गैस पराबैंगनी किरणों के कारण ही बनती है। अब देखते हैं कि इन पराबैंगनी तरंगों से ओज़ोन बनती कैसे है और ओज़ोन कैसे पराबैंगनी तरंगों को धरती तक आने से रोकती है।

सूर्य प्रकाश के साथ आने वाली वे पराबैंगनी तरंगें जिनकी तरंग लम्बाई 242 नैनोमीटर (242×10^{-9} मीटर) से कम है, समतापमंडल में ऑक्सीजन को जोड़कर ओज़ोन बनाती हैं यानी दो परमाणु वाली ऑक्सीजन तीन परमाणु वाली ओज़ोन में बदल जाती है। इस बात को इस तरह भी कह सकते हैं –

1ऑक्सीजन अणु + 1ऑक्सीजन परमाणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में) =1ओज़ोन अणु

इस तरह ओज़ोन लगातार बनती रहती है। चूंकि इन पराबैंगनी तरंगों की ऊर्जा ओज़ोन बनाने में खर्च हो जाती है इसलिए इन कम तरंग लम्बाई वाली पराबैंगनी किरणों की घातकता खत्म हो जाती है।

ऊपर बताई गई प्रक्रिया से बनी ओज़ोन सूर्य प्रकाश के साथ आने वाली उन पराबैंगनी तरंगों को सोख लेती है जिनकी तरंग लम्बाई 242 से 290 नैनोमीटर तक होती है। अब होता यह है कि इन पराबैंगनी किरणों को सोखकर ओज़ोन टूटकर ऑक्सीजन बनाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो –

एक ओज़ोन अणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में)= 1ऑक्सीजन अणु + 1ऑक्सीजन परमाणु

इस तरह पराबैंगनी किरणों की ऊर्जा ओज़ोन से ऑक्सीजन बनाने में खर्च हो जाती है और ज़्यादा तरंग लम्बाई वाली पराबैंगनी तरंगों की घातकता खत्म हो जाती है।

यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन पराबैंगनी तरंगों की लम्बाई 242 से 290 नैनोमीटर है वे हम सब के लिए घातक हैं। इनके अलावा अन्य पराबैंगनी तरंगों में से कुछ तरंगें धरती तक पहुँचती हैं लेकिन वे हमारे लिए हानिकारक नहीं हैं। इस तरह पराबैंगनी तरंगों की सारी ऊर्जा ऑक्सीजन से ओज़ोन बनाने तथा ओज़ोन से ऑक्सीजन बनाने में ही खत्म हो जाती है। और हमारे लिए हानिकारक तरंगें धरती तक नहीं पहुँच पातीं।

अब आते हैं तुम्हारे अगले सवाल पर कि पराबैंगनी तरंगों से क्या नुकसान हो सकते हैं। पराबैंगनी तरंगों के शरीर तक पहुँचने के कारण खसरा, माता, चमड़ी का झुलसना तथा कैंसर जैसे खतरनाक रोग हो सकते हैं। आँखों से सम्बंधित विभिन्न रोग भी होते हैं। यह तरंगें सिर्फ मनुष्य के लिए ही हानिकारक हैं ऐसा नहीं है। इन तरंगों का प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है। अभी इस बात को जानने के लिए प्रयोग चल रहे हैं कि पराबैंगनी तरंगों का पेड़-पौधों, थल और जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है। अभी तक किए प्रयोगों से यही बात सामने आई है कि इन तरंगों से पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर भी पराबैंगनी तरंगें प्रभाव डालती हैं। खैर, सच जो भी सामने आए लेकिन इतनी बात तो तय है कि पराबैंगनी तरंगें हमारे लिए घातक हैं।

पिछले कुछ वर्षों से हम सभी पढ़-सुन रहे हैं कि अंटार्कटिका के ऊपर ओज़ोन परत में छेद पड़ गया है। (एक बार फिर याद दिला दें कि परत यानी दूध पर मलाई की परत जैसी परत मत मान बैठना।) छेद का मतलब है कि अंटार्कटिका के ऊपर ओज़ोन बहुत कम रह गई है और घातक पराबैंगनी तरंगें (242 से 290 नैनोमीटर वाली) अंटार्कटिका में ज़मीनी सतह तक आ रही हैं।

समताप मंडल में ओज़ोन की मात्रा के कम होने के कई कारण बताए गए हैं। इनमें से एक प्रमुख कारण है सी.एफ.सी. नामक रसायन का बहुत ज़्यादा उपयोग होना। सी.एफ.सी. (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) नामक रसायन का उपयोग फ्रिज की गैस बनाने, पेंट बनाने, फोम तथा कीटनाशकों के निर्माण आदि में किया जाता है। यह सी. एफ. सी. नामक रसायन जिसमें क्लोरीन गैस भी होती है वायु मंडल में लम्बे समय तक बना रहता है और पराबैंगनी तरंगों के सम्पर्क में आने पर क्लोरीन के परमाणु वायुमंडल में छोड़ देता है। अब यह क्लोरीन ओज़ोन से क्रिया करके क्लोरीन मोनोऑक्साइड
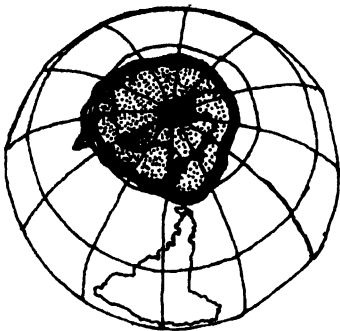
ओज़ोन छेद : अंटार्कटिका (दक्षिणी ध्रुव) के ऊपर बने आज़ोन छेद का एक रेखाचित्र। इसमें दक्षिणी अमेरिका भी दिखाया गया है।

और ऑक्सीजन बनाती है। क्लोरीन मोनोऑक्साइड एक अस्थिर किस्म का अणु है और यह बहुत जल्दी क्लोरीन के एक परमाणु के रूप में मुक्त हो जाता है। इस रासायनिक क्रिया को इस तरह भी बता सकते हैं –

ओज़ोन + क्लोरीन= ऑक्सीजन + क्लोरीन मोनोऑक्साइड

क्लोरीन मोनोऑक्साइड अस्थिर होने के कारण जल्दी ही फिर से क्लोरीन में बदल जाता है और ओज़ोन के किसी दूसरे परमाणु से क्रिया करके फिर से ओज़ोन को ऑक्सीजन में परिवर्तित कर देता है। इस तरह यह क्रम चलता रहता है और क्लोरीन का एक परमाणु ओज़ोन के तकरीबन एक लाख अणुओं को नष्ट कर देता है। इस रासायनिक क्रिया के लिए पृथ्वी के ध्रुवीय प्रदेशों का ठण्डा और ज़्यादा दाब वाला वातावरण काफी अनुकूल साबित हुआ है। इस कारण ओज़ोन अणुओं की संख्या में कमी भी सबसे पहले अंटार्कटिका और आर्कटिक प्रदेशों में देखी गई। और ओज़ोन अणुओं की संख्या कम होने से अंटार्कटिका में सूर्य प्रकाश के साथ घातक पराबैंगनी तरंगें भी ज़मीन तक आ रही हैं।

समस्या गम्भीर है इसलिए दुनिया के सभी देशों ने फैसला किया है कि आने वाले कुछ वर्षों में सभी देश सी. एफ. सी. रसायन का उपयोग धीरे-धीरे कम करेंगे और दूसरा रसायन उपयोग में लाएंगे जो ओज़ोन को प्रभावित न करे।

मेहराबदार पुल को देखो समझ जाओगे

सवाल : सेना में भर्ती के समय पैर में मेहराब क्यों देखी जाती है?

जवाब : आओ सबसे पहले मेहराब को समझते हैं। अपने गांव, शहर के आसपास सड़कों पर बनी पुलियाओं, पुराने पुलों को देखो। इनमें से कई की संरचना मेहराबदार होगी। भला पुल पुलियाओं में मेहराब का क्या काम? दरअसल इन पर से खूब वज़नी सामान लादे भारी-भरकम गाड़ियां
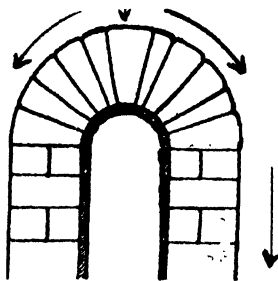
गुज़रती हैं - इसलिए इनका मज़बूत होना बेहद ज़रूरी है। मेहराब इसे यही मज़बूती देती है। कैसे?

इसे चित्र से समझते हैं। मेहराब में जो भी पत्थर लगे रहते हैं वे ऊपर से चौड़े और नीचे से संकरे होते हैं। जब वज़न या बल ऊपर वाले पत्थर पर पड़ता है तो आकार के कारण यह अपने नीचे वाले दो पत्थरों को दबाता है। संरचना के कारण पत्थर एक-दूसरे को दबा तो सकते हैं लेकिन गिर नहीं सकते - ये दो पत्थर अगले पत्थरों को दबाते हैं। यह प्रक्रिया चलती रहती है और इस तरह बीच के पत्थर पर एक सीध में पड़ने वाला वज़न या बल मेहराब के दो खंभों पर बराबर-बराबर बंट जाता है - कुल मिलाकर कहें तो मेहराब का काम है एक सीध में पड़ने वाले वज़न या बल को - जिसके नीचे कोई टेक नहीं है - दूर स्थित दो पायों पर दो बराबर भागों में बांट देना।

ये तो हुई मेहराब की बात, अब अपने पैरों को देखते हैं। पैर यानी पूरे शरीर का वज़न ढोने वाले अंग - इनका मज़बूत होना बेहद ज़रूरी है। मेहराब इन्हें मज़बूत बनाती है, पूरे वज़न को पंजों और एड़ियों के बीच बांटकर - बिल्कुल पुल की तरह। इस तरह शरीर का वज़न चार कोनों पर बंटने से किसी एक हिस्से पर ही पूरा वज़न नहीं पड़ता - हमारे खड़े होने का एक बड़ा आधार तैयार होता है - और संतुलन बना रहता है।

अब चलने की प्रक्रिया को समझते हैं - यह गिर-गिरकर संभलने जैसी बात है। जिसमें शरीर आगे आता है - एक कदम आगे बढ़ने पर वज़न एक पैर के पंजे पर और दूसरे पैर की एड़ी पर रहता है तो अगले कदम पर पहले
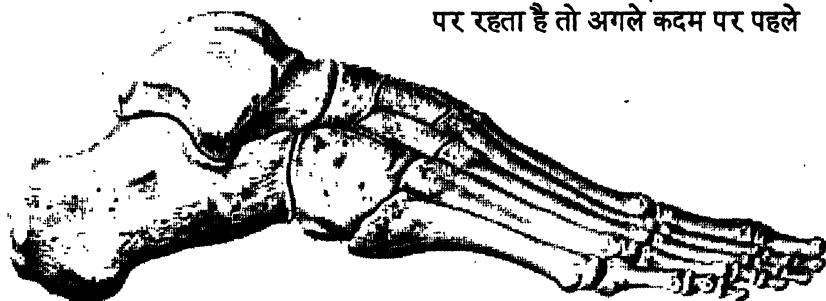
पैर की एड़ी और दूसरे पैर के पंजे पर चला जाता है - इस तरह वज़न लगातार एड़ियों से पंजों और पंजों से एड़ियों पर बदलता रहता है। इस दौरान पैर को लगातार झटके सहने पड़ते हैं - मेहराब इन झटकों को सहने का काम करती है - किसी गाड़ी के शॉक-अप की तरह, जिसमें सड़क से लगने वाले झटके सवार तक नहीं पहुंचते।
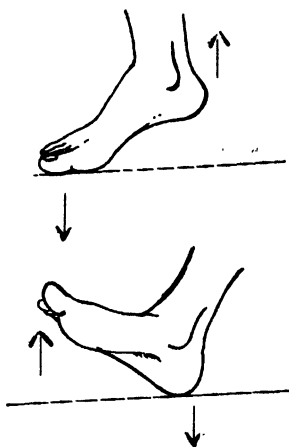
अब समझते हैं उन दिक्कतों को जो सपाट तलुए वाले लोगों को हो सकती हैं। मेहराब न होने से उनका वज़न एड़ियों और पंजों पर नहीं बंटेगा, बल्कि तलुए के किसी एक बिन्दु पर केंद्रित होगा (शायद टखने की हड्डी के नीचे वाले बिन्दु पर)।

यानी उनका खड़ा होने का आधार भी बहुत छोटा होगा - इसलिए धक्का आदि लगने पर उन्हें तुरंत संतुलन बनाने में दिक्कत होती है। क्योंकि चार बिन्दुओं से बने एक बड़े आधार पर टिकना आसान है, दो बिन्दुओं पर कम। दूसरा मेहराब न होने से उन्हें चलने दौड़ने के समय दिक्कत होगी। इस प्रक्रिया में जो झटके लगेंगे उनका असर पूरे पैर पर पड़ेगा और जल्दी ही पैर दर्द करने लगेंगे। यह सब पढ़कर कहीं ऐसा तो नहीं लगने लगा कि मेहराब न होना अपंगता है - बिल्कुल नहीं। रोज़मर्रा की दौड़ भाग में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। हां, ज़रा लंबा चलना हो, दौड़ना हो या फिर बहुत सारी सीढ़ियां चढ़ना हो तो थोड़ी दिक्कत हो सकती है।

जहां तक सेना में भर्ती का सवाल है तो उन्हें तो पूरी तरह चुस्त-दुरुस्त लोग चाहिए। जो ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर कूदते फांदते चल सकें, ज़रूरत हो तो तेज़ दौड़ सकें - तो फिटनेस के लिहाज़ से मेहराब की जांच बिल्कुल ऐसी ही है जैसे कि सेना में भर्ती के समय सीने की चौड़ाई, ऊंचाई, आंख आदि की जांच।

इस बार का सवाल

दूध और पानी दोनों तरल पदार्थ हैं मगर हम जब दूध को उबालते हैं तो वह उफन जाता है। और गिरने लगता है किंतु पानी को उबालें तो वह क्यों नहीं उफनता?

प्रभाकांत भारद्वाज, जवाहर पारा, बालोद, ज़िला - दुर्ग, म.प्र.

ज़रा सिर तो खुजलाइए

दूसरे अंक में हमने आपसे तीन सवाल पूछे थे।

1. घर से स्कूल तक कम-से-कम समय में जाने के लिए आप कौन-सा विकल्प पसंद करेंगे और क्यों?
   अ. आधी दूरी तक चलकर जाना और आधी दूरी तक दौड़कर जाना।
   ब. आधा समय चलकर जाना और आधा समय दौड़कर रास्ता तय करना।
2. एक माली था जिसे पेड़-पौधे को विभिन्न आकृतियों में लगाने में मज़ा आता था। एक बार उसने गुलाब के दस पौधे इस तरह लगाए कि कुल कतारें पांच बनीं और हर कतार में चार पौधे थे। आप भी वैसा ही बाग लगाना चाहेंगे? तो सोचिए उसने पौधे कैसे लगाए होंगे।
3. मैं भोपाल से होशंगाबाद सड़क के किनारे-किनारे समान गति से चल रहा हूं। चलते-चलते मैंने देखा कि मेरे पीछे से यानी भोपाल की ओर से हर बारह मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। और मेरे सामने से यानी होशंगाबाद की ओर से हर चार मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। यदि ट्रक या बस प्रत्येक घंटे में समान दूरी तय करते हों तो भोपाल और होशंगाबाद से कितने-कितने मिनटों के अंतराल के बाद बस या ट्रक छोड़ी जा रही है?

एस. एन. साहू (शिक्षक, शा. आर.एन.ए.उ.मा.विद्यालय पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद, म.प्र.) ने पहले दो सवालों के सही जवाब दिए हैं - उनके भेजे हल यहां दिए जा रहे हैं।

घर से स्कूल तक कम समय में जाने के लिए मैं विकल्प 'ब' (आधा समय चलकर जाना और आधा समय दौड़कर रास्ता तय करना) पसंद करूँगा क्योंकि-

माना घर से स्कूल तक की दूरी 1200 मीटर है। मेरी पैदल चाल 100 मीटर प्रति मिनट और दौड़ की चाल 500 मीटर प्रति मिनट है। अब विकल्प 'अ' के अनुसार देखें - जिसमें मैं आधी दूरी चलकर और आधी दूरी दौड़कर तय करता हूँ तो–

600 मीटर पैदल चलने में लगा समय 600/100 = 6 मिनट

और 600 मीटर दौड़कर लगा समय 600/500 = 1 मिनट 12 सेकेंड

यानी कुल 7 मिनट 12 सेकेंड समय लगा।

अब विकल्प 'ब' को देखते हैं – मैं आधा समय दौड़कर और आधा समय पैदल चलकर रास्ता तय करता हूँ तो–

2 मिनट में पैदल चलकर तय की दूरी : 2 X 100 = 200 मीटर
2 मिनट में दौड़कर तय की दूरी : 2 X 500 = 1000 मीटर

यानी रास्ता तय करने में कुल 4 मिनट लगेंगे। जबकि विकल्प 'अ' में मुझे कुल 7 मिनट और 12 सेकेंड का समय लगता है। इसलिए मैं विकल्प 'ब' पसंद करूँगा।

हमें लगता है कि इस सवाल को सिर्फ तर्क इस्तेमाल करते हुए भी हल किया जा सकता है -

आधी दूरी पैदल चलकर और आधी दूरी दौड़कर तय करने वाली स्थिति में हम दौड़कर और पैदल चलने में बराबर-बराबर दूरी तय करते हैं। जबकि एक निश्चित समय तक दौड़ने और पैदल चलने पर हम दौड़ते हुए ज़्यादा दूरी तय करते हैं। यानी आधा समय दौड़ते हुए हम आधे से ज़्यादा रास्ता तय कर लेते हैं और पैदल चलकर तय किया जाने वाला रास्ता काफी कम बचता है।

निष्कर्ष रूप में हम देखते हैं कि विकल्प 'ब' में हम काफी कम रास्ता पैदल चलकर तय करते हैं। इसलिए घर से स्कूल तक का रास्ता जल्दी तय करेंगे।

दूसरे सवाल का उत्तर – माली ने 10 गुलाब के पौधे कुछ इस तरह लगाए कि पाँच कतारें भी बन गईं और हर कतार में चार पौधे भी थे –(इस सवाल का सही जवाब मेधा एवं नेहा दुबे, केन्द्रीय विद्यालय क्रमांक - 2, इटारसी, ज़िला होशंगाबाद ने भी भेजा है।)
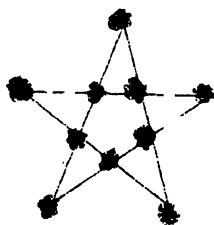
और अब तीसरे सवाल का हल - जिसका जवाब कोई भी नहीं दे पाया।

मान लें कि भोपाल और होशंगाबाद दोनों तरफ से X मिनट के अंतराल पर बसें छोड़ी जा रही हैं। सबसे पहले बात करते हैं भोपाल से छोड़ी जा रही बस की यानी कि पीछे से आ रही बस की -
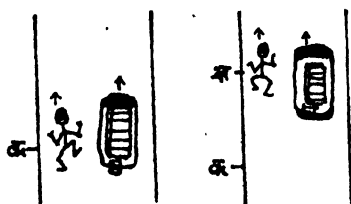
मान लीजिए पीछे से आने वाली बस मुझे 'क' बिन्दु पर मिलती है।

मैं होशंगाबाद की ओर चलता रहता हूं।

12 मिनट बाद पीछे से आने वाली दूसरी बस मिलती है 'ख' बिन्दु पर।

'क' से 'ख' बिन्दु तक की दूरी मैंने 12 मिनट में तय की। भोपाल से आने वाली बस X मिनट के अंतराल से छोड़ी जा रही है। इसलिए 'क' से पहली बस के गुज़रने के X मिनट बाद दूसरी बस गुज़रेगी। और 12 मिनट बाद दूसरी बस 'ख' बिन्दु पर पहुंच जाती है। इसलिए पीछे से आने वाली बस को 'क' से 'ख' तक की दूरी तय करने में 12 - X मिनट लगते हैं।

यानी कि जो दूरी मैंने 12 मिनट में तय की वह पीछे से आने वाली बस ने 12 - X मिनट में तय की।

इसलिए जो दूरी मैं 1 मिनट में तय करता हूं उसे तय करने में पीछे से आने वाली बस को लगते हैं = $\frac{12 - X}{12}$ मिनट ----(1)
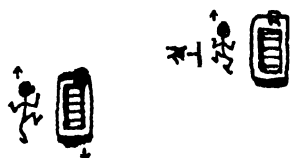
अब होशंगाबाद से आने वाली बस को देखें। सामने से आने वाली बस मुझे 'क' बिन्दु पर आकर मिलती है।

4 मिनट बाद सामने से आने वाली दूसरी बस मिलती है 'ख' बिन्दु पर।

'क' से 'ख' की दूरी मैंने 4 मिनट में तय की। सामने से आने वाली दूसरी बस 4 मिनट बाद 'ख' बिन्दु पर पहुंचेगी और X मिनट बाद 'क' बिन्दु पर पहुंचेगी। यानी कि उसे 'क' से 'ख' की दूरी तय करने में X - 4 मिनट लगेंगे।

मैंने जो दूरी 4 मिनट में तय की उसे बस ने X - 4 मिनट में पार किया।

इसलिए जो दूरी मैं एक मिनट में तय करता हूं उसे सामने से आने वाली बस पार कर लेती है = $\frac{X - 4}{4}$ मिनट में ----(2)

इन दोनों समीकरणों (1) और (2) की तुलना करने पर :

$$\frac{12 - X}{12} = \frac{X - 4}{4}$$

$$12 - X = 3 - 12$$

$$4X = 24$$

$$X = 6$$

यानी भोपाल और होशंगाबाद से 6–6 मिनट के अंतराल से बसें छोड़ी जा रही हैं।

इस बार आपका सिर खुजलाने वाला सवाल

जिस प्रयोग का यहां ज़िक्र किया जा रहा है वह फैराडे ने किया था। इसमें धातु की तारों के जाल का एक पिंजरा बनाया गया है। इस पिंजरे की सतह विद्युत की चालक है। पिंजरे को एक कुचालक पर रखा गया है और वह पृथ्वी के संपर्क
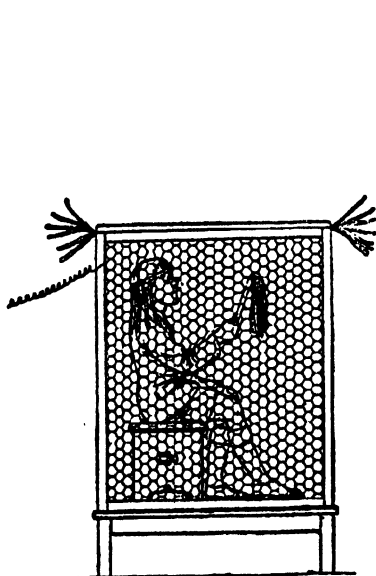
चित्र - 1
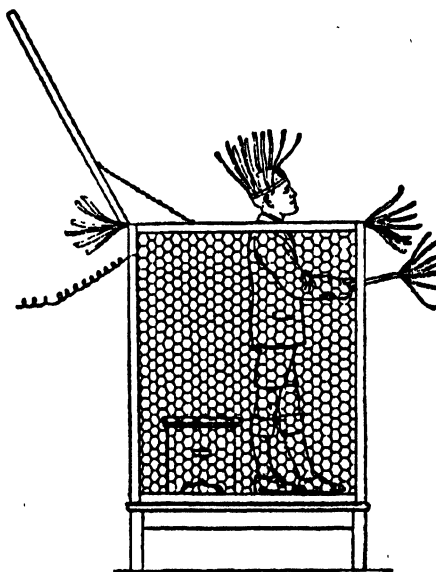
चित्र - 2

में नहीं है। एक मशीन द्वारा पिंजरे को आवेशित किया जा सकता है। पिंजरे के कोनों पर पताकाओं (झण्डियों) के झुंड लटके हैं।

फैराडे अपने अत्यंत संवेदनशील विद्युत नापने वाले उपकरणों को लेकर पिंजरे के अंदर घुस गया परन्तु उसके उपकरण पिंजरे के अंदर किसी प्रकार के विद्युतीय प्रभाव का अहसास नहीं कर पाए। लेकिन पिंजरे के किनारे पर जो पताकाएं बंधी थीं वे बिल्कुल सीधी खड़ी हो गईं।

पहला सवाल तो यह है कि पिंजरे के अंदर फैराडे के उपकरणों पर कोई असर क्यों नहीं हुआ? अब आगे देखते हैं –

चित्र - 1 में एक लड़का आवेशित पिंजरे के अंदर बैठा है। उसके हाथ में पकड़े डंडे पर पताकाएं लगी हैं। और उसके सिर पर टोपी में भी ऐसी पताकाएं बंधी हैं। बंद आवेशित पिंजरे में अंदर वाली पताकाएं लटक रही हैं। इन पताकाओं और बाहर की पताकाओं के व्यवहार में क्या अंतर है और यह अंतर क्यों है?

अब अगर पिंजरा खोलकर लड़का खड़ा हो जाए और डंडे के साथ बंधी झंडियों को भी पिंजरे के जाल में से बाहर निकाल दे तो क्या होगा यह चित्र - 2 में दिखाया गया है। चित्र 1 और 2 में क्या-क्या अंतर हैं और यह अंतर क्यों हैं?

* * * * *

जब बिजली गिरे

आसमान से बिजली गिरी और धरती में समा गई। यही बिजली जब रेतीली ज़मीन पर गिरती है तो इसके भीषण ताप से कभी-कभी मिट्टी पिघलकर ऐसे आकारों में ढल जाती है - मानो किसी पेड़ की जड़ मिट्टी में लिपटी हो। परन्तु ज़रूरी नहीं कि रेतीली ज़मीन पर बिजली गिरे तो हर बार ऐसा ही हो।
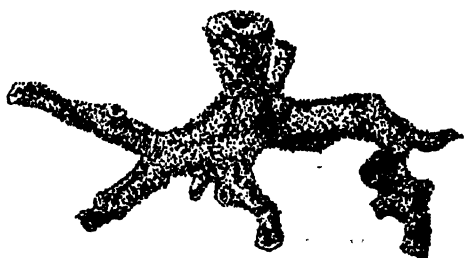
पानी को जांचें परखें

क्या इस काम भी आ सकती है स्कूल की प्रयोगशाला?

पिछले अंक में हाईस्कूल की प्रयोगशाला में उपलब्ध उपकरणों और रसायनों का इस्तेमाल करते हुए पानी की जांच की दो विधियां देखी थीं- पानी का पी.एच. और अम्लीयता पता करना। इस बार पानी के एक और गुणधर्म की जांच करते हैं।

पानी की क्षारीयता पता करना

पानी की क्षारीयता यानी उसमें घुले क्षारों की कुल मात्रा। आमतौर पर पानी में कार्बोनेट और हाइड्रॉक्साइड जैसे पदार्थोंऔर कुछ अकार्बनिक क्षारों की मौजूदगी, पानी को क्षारीय बना देती है। कभी-कभी बोरेट, सिलिकेट और फॉस्फेट भी घुले होते हैं।
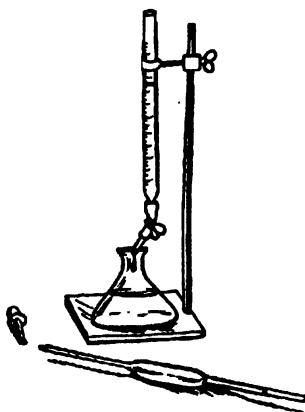
इस विधि में भी पहले कार्बोनेट और हाइड्रॉक्साइड जैसे क्षारों का पता लगाया जाता है। उसके लिए फिनोफ्थलीन सूचक से उदासीनीकरण (टाइट्रेशन) करते हैं। इसे पानी की फिनोफ्थलीन क्षारीयता भी कहते हैं।

फिर मिथाईल ऑरेंज से टाइट्रेशन करके कमज़ोर क्षारों की मात्रा पता कर लेते हैं। इसे मिथाईल ऑरेंज क्षारीयता कहते हैं। आमतौर पर यह कैल्शियम और मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट के कारण होती है। और इस तरीके में भी अगर इन दोनों क्षारीयताओं को मिला दें तो कुल (संयुक्त) क्षारीयता पता चल जाती है।

पानी की क्षारीयता पता करने का तरीका

सबसे पहले पानी का पी.एच. पता कर लें। अगर पी.एच. का मान 7 से अधिक हो तो ही उसकी क्षारीयता की ज़ांच करेंगे। पी.एच. 7 से कम हो तो पानी अम्लीय होगा क्षारीय नहीं।

आवश्यक रसायन :

(क) नमक का अम्ल (हाईड्रोक्लोरिड एसिड) .02 N
(अगर स्टॉक घोल 1 N हो तो उसे 50 गुना तनु करके 0.02 N बना लो।)

(ख) फिनोफ्थलीन सूचक घोल

(ग) मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल

आवश्यक उपकरण : ब्यूरेट, पिपेट, ड्रॉपर, टाइट्रेशन फ्लास्क

विधि :

(1) ब्यूरेट को आसुत जल से साफ करके उसमें नमक के अम्ल का मानक घोल भरकर रीडिंग **'क'** लिख लो।

(2) टाइट्रेशन फ्लास्क में पिपेट की सहायता से 20 मिली. नमूने का पानी ले लो। इसमें दो बूंदे फिनोफ्थलीन सूचक घोल डालकर हिला लो। यदि घोल गुलाबी हो जाए तो ब्यूरेट में भरे अम्ल के घोल से रंग समाप्त हो जाने तक टाइट्रेट करो। रीडिंग **'ख'** लिख लो।
अगर फिर दो बूंद फिनोफ्थलीन डालने पर घोल रंगहीन ही रहे तो अगला कदम चलो। अगर घोल फिर गुलाबी हो जाए तो यही कदम (2) फिर दोहराना होगा। जब तक कि फिनोफ्थलीन की दो बूंदें डालने पर भी घोल रंगहीन ही रहे।

(3) इसी फ्लास्क में दो बूंद मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल डालो और अम्ल के घोल से तब तक टाइट्रेट करो जब तक फ्लास्क के घोल का रंग नारंगी-पीले से बदलकर गहरा गुलाबी न हो जाए। ब्यूरेट की रीडिंग **'ग'** लिख लो।

परिणाम :

फिनोफ्थलीन क्षारीयता = 50 x (**ख** - **क**) मि. ग्रा. प्रति लीटर

संयुक्त क्षारीयता = 50 x (**ग** - **क**) मि. ग्रा. प्रति लीटर

(पचासिया, छिंदवाड़ा क्षेत्र के विद्यार्थियों और शिक्षकों के साथ हुए एक प्रयोग पर आधारित।)

घनश्याम की नज़र से ....

अब आज किधर
वही सर्वे और क्या
जयरामजी की
बेचारे मास्साब
आज गुरुजी मतदाता सूची बनाने जा रहे हैं। छुट्टी
सर्वे, मतदान,
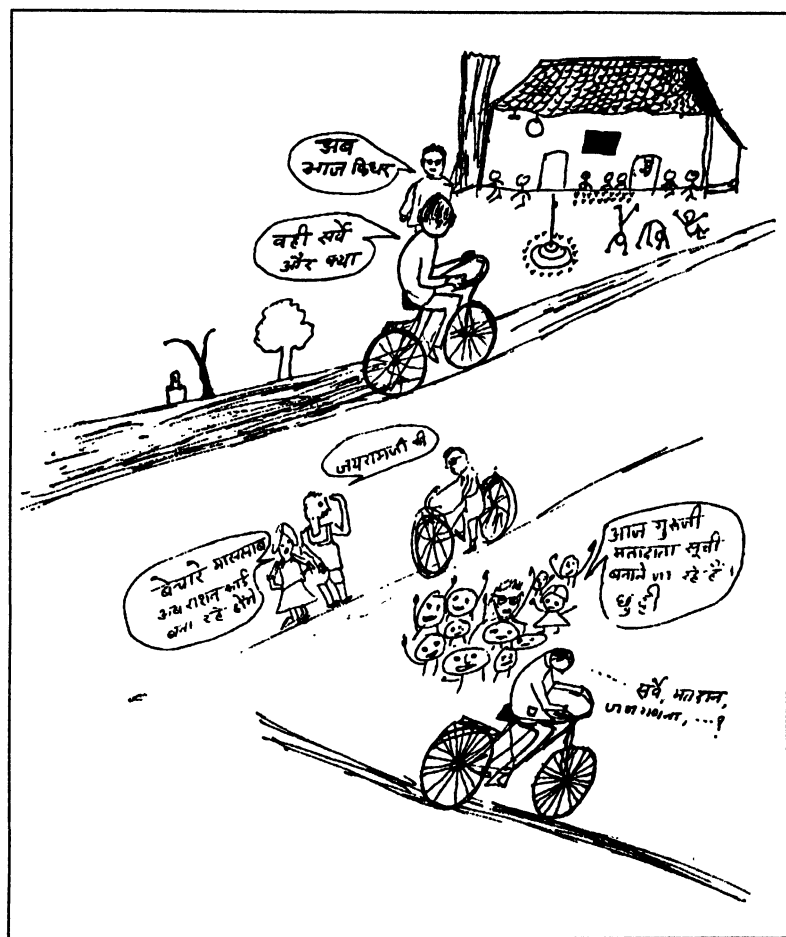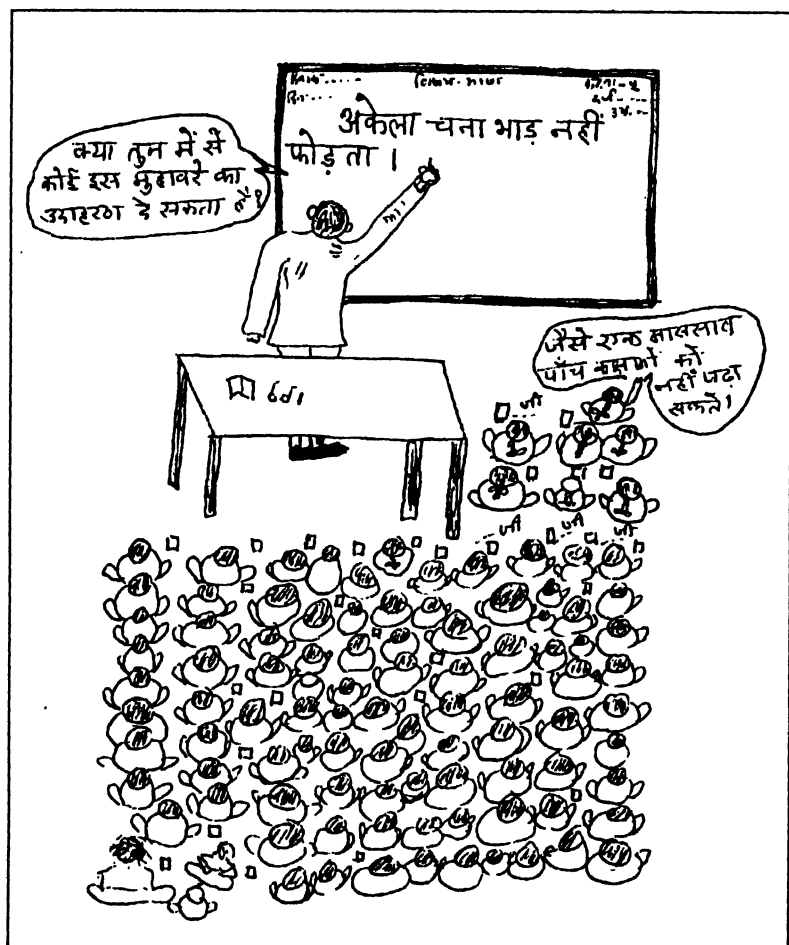
घनश्याम - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से संबद्ध

हंगेरियन कहानी

एक सितंबर की याद

• फैरेन्त्ज़ मोरा

अनुवादः भारत भूषण

ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे। उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!'

वे गर्मियाँ भी ठीक ऐसी ही थीं, गेहूँ की बालियाँ लहलहा रही थीं, अंगूर की बेलें गुच्छों से लदी थीं। न तो पेड़ों में और सेब लगाए जा सकते थे, न बेलों में और अंगूर।

"तो बेटा, अब नई किताबें आएंगी और फसल पर नए कपड़े" पिताजी ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, "हाँ, सचमुच। सुनहरी बटनों वाली वास्कट, चाँदी और सोने के काम की।"

पूरे साल-भर से लज्जा का जो बोध मुझे खाए जा रहा था अब मेरे गालों पर उछल आया। प्राइमरी स्कूल के पहले दर्जे के विद्यार्थी के रूप में मेरी बड़ी लालसा थी कि मैं व्हिटसन (त्यौहार) पर अपने पड़ोसी स्त्रोसों की तरह बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनूँ। उनके लिए तो खैर यह बड़ी आसान बात थी क्योंकि उनके पिता की बजाजे की दुकान थी और वे चाहे जिस राजकुमार की तरह सज सकते थे (पीला पाजामा, लाल वास्कट और पंखदार हरा हैट) पर मुझे अपने कपड़ों की खोज-खबर खुद ही करनी थी। सौभाग्य से मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। गली के सामने की तरफ सात घर छोड़कर ताबूत वाले चाचा मिस्टर रैवेन रहते थे, जो ताबूतों पर नया रंग चढ़ाकर अपने आँगन में सुखाया करते थे। मैंने उनके ताबूतों पर से सुनहरे कागज़ के अक्षर चुरा लिए और अपनी जाकिट के दाएं-बाएं पल्लों पर टाँक लिए। मेरी जाकिट सचमुच बड़ी सुन्दर लग रही थी और ईश्वर की कृपा से मेरी खुशी सम्राटों से भी ज़्यादा थी, जिनके सीनों पर पूरी आकाश-गंगा झिलमिलाती रहती है। पर बुजुर्गों में सौन्दर्य के प्रति वैसी रुचि नहीं होती जैसी बच्चों में होती है। मेरी माँ ने ज़बरदस्ती वे अक्षर उखड़वा दिए और चिन्तित होकर सिर हिलाने लग गईं।

"अभी तो पहले ही दर्जे में जा रहे हो। अभी से तुम्हारा यह हाल है तो आगे चलकर न जाने क्या होगा? क्या तुम्हें कभी अक्ल न आएगी?"

खैर, दूसरे दर्जे में मुझे सचमुच अक्ल आ गई। मैंने पूरी-की-पूरी पवित्र बाइबिल

पढ़ डाली, ओल्ड और न्यू दोनों टेस्टामेंट, सांग ऑफ सांग्स, द एपोकैलिप्स, और उन यहूदी राजाओं की कथाएँ पढ़कर मेरे होश अजीब तरह से ठिकाने आ गए। जब कभी पनीर के पाग को लेकर ओल्गास्त्रोस से मेरा झगड़ा छिड़ जाता तो मैं उसे जेज़ाबेल कहने लग जाता और उससे कहता, अगर तुझसे मेरी शादी हो गई तो मैं तुम पर शिकारी कुत्ते छुड़वा दूंगा (यह दृश्य मैंने बाईबिल के सुन्दर वुड-कट में देखा था)।

क्रोन स्ट्रीट में मुझे बड़ा ज्ञानी माना जाता था और मेरे गुण अधिकृत रूप में भी स्वीकृत हो चुके थे। तिमाही रिपोर्ट बँटने के समय मुझे बीस मोहरों का तोड़ा मिला, स्कूल भर में सबसे बड़ा, और मैं उन्हें अपनी मेज़ पर गिन ही रहा था कि पिताजी ने हँसी-हँसी में ही मुझे अपने अतीत के कलंक, ताबूत वाली उस घटना की याद दिला दी।

"इनकी बात पर न जाना बेटे!" माँ ने रसोई से झाँकते हुए कहा, "ये तो खाली मज़ाक कर रहे हैं। मैं तुम्हें एक और बात बताती हूँ। तुम्हारी इस नन्हीं पूँजी में से हम तुम्हारे पिताजी को दस मोहरें दे देंगे ताकि ये पिछले साल का टैक्स भर सकें। बाकी दस तुम मुझे उधार दे देना। उनसे हम तुम्हारे दादा-दादी की कब्र के लिए अखरोट की लकड़ी का क्रूस बनवाएंगे और दो नन्हें सुअर भी खरीद लेंगे। गर्मियों में तुम उन्हें अंगूरों की छाया में चराया करना। फसल के वक्त तक वे बड़े हो जाएंगे और जाड़ों के मेले में हम उनमें से एक को बेचकर उन रुपयों से तुम्हारी तीसरे दर्जे की किताबें खरीद देंगे। ठीक है न?"

बेशक ठीक तो है ही! रुपयों के मामले में पिताजी का ज्ञान उतना ही था जितना मेरा, इसलिए आर्थिक साम्राज्य की बागडोर माँ के ही हाथ में रहती थी। मेरे जीवन में वह पहला और आखिरी बजट था जिसकी बुनियाद पक्की थी। अगर यह स्वर्ग-स्थित अधिकारियों को पसन्द न आया तो दोष हमें नहीं दिया जा सकता।

सन्त स्टीफेन के दिन (20 अगस्त), ओलों ने अंगूरों को धराशाई कर दिया, यही नहीं उन्होंने अंगूर की बेलें भी झिंझोड़कर रख दीं। अगले दिन सवेरे, जो चाहे ओलों से अपने पसे (अंजुली) भर सकता था, क्योंकि पानी ने उन्हें बहाकर
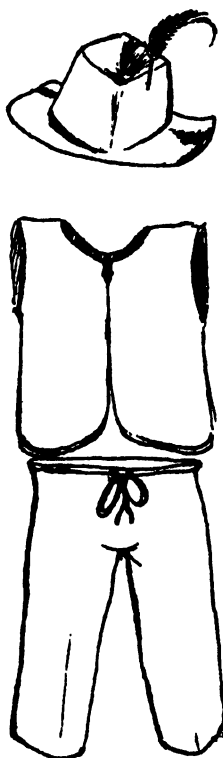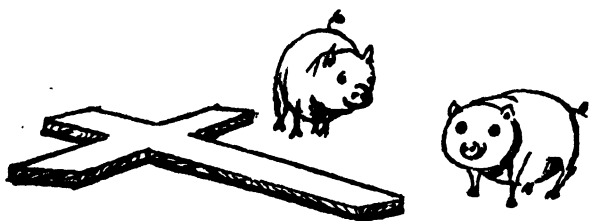
निचली जगहों में जमा कर दिया था। तभी से वह सन्त स्टीफेन का दिन हमारे परिवार के लिए एक ऐतिहासिक तिथि बन गया। यह दिन हमारे लिए पत्थर की लकीर बन गया है, और हम हरेक बात का हिसाब उसी से लगाते हैं।

स्वर्ग से हुई इस उपल-वर्षा ने दोनों नन्हें सुअरों का भी काम तमाम कर दिया। अगर पिताजी कोई रोम-सम्राट होते तो ज्योतिषीगण निश्चय ही उन सुअरों के लिए ध्रुव-तारे के आस-पास की कोई चर-भूमि निर्धारित कर देते, क्योंकि अन्य नक्षत्रीय पशुओं का भी वहीं निवास है। पर हमारी स्थिति वैसी तो थी नहीं, इसलिए हमने उन्हें चम्पे के झाड़ की छाया में ही दफ़ना दिया। इस काम में मैंने भी हाथ बँटाया और जब मैंने पिताजी को आँखों पर हथेलियाँ रखते देखा तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मैंने इससे पहले कभी किसी बुजुर्ग को रोते नहीं देखा था। खास तौर से अपने यहाँ। अब तो मैं सीख चुका हूँ कि हमारी तरह के आँसू साधारणतः अन्दर की ओर बहा करते हैं।

अब मुझे पहली बार भान हुआ कि हो-न-हो कोई बड़ी अशुभ घटना हो गई है। पर सितम्बर की पहली तारीख से पहले, 'सफेद हाथों के दिन' से पहले मैं यह न जान पाया कि वह थी क्या।

मेरी माँ दाखिले के लिए मुझे स्कूल ले गई। अपने बच्चे की उँगली थामने पर हर माँ शेरनी हो जाती है। तब उन्हें अच्छों-अच्छों से भी डर नहीं लगता।

ड्यूटी पर तैनात टीचर मिस्टर जोयोमि किसी भी रूप में डरावने न थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे, शहद की तरह मीठे, और जहाँ तक मैं जानता हूँ वे अपने जीवन के सायंकाल तक ऐसे ही बने रहे। यहाँ तक कि जब उन्होंने देखा कि मेरी दूसरे दर्जे वाली स्कूल-रिपोर्टों में 'वेरी गुड' के अलावा और कुछ अंकित नहीं है तो उन्होंने मेरी माँ को बैठने के लिए कुर्सी भी दी।

"तब तो माताजी आपको अपने इस नन्हें जादूगर से बड़ा सुख मिलता होगा" रूलर से मेरे भय-शुष्क चेहरे को थपथपाते हुए टीचर बोले। उम्र के लिहाज़ से मेरी माँ टीचर की बेटी के बराबर लगती थीं। पर चिन्ता की मकड़ियों के जाले उनके पच्चीसवें साल में ही बालों में उलझ गए थे। अगर कोई उनकी उम्र बढ़ा-चढ़ाकर

आँकता तो हमें कभी बुरा न लगता था। आहत दर्प ने नहीं वरन् गर्व ने मेरी माँ के चिर-विपन्न चेहरे को सेब के से रंग का बना दिया था। उन्होंने अचानक भावावेश से मेरी ओर देखा, पर फिर फौरन ही सहज हो गईं। अपने ब्लाउज़ में से उन्होंने अपना रंगीन रुमाल निकाल लिया।

"मेहरबानी करके बताएं मुझे कितना देना है?" उन्होंने टीचर से कहा और रुमाल का एक छोर खोलने लगीं।

"छह रुपए तिरपन पैसे, देवी जी!"

सेब-सा रंग धुँधला होकर बेर-सा रंग बन गया।

"हमारे पास तो सिर्फ़ एक रुपया है श्रीमान जी! मेरे रेशमी रुमाल का उस जिप्सी औरत ने इतना ही दिया। मेरे पति ने कहा कि गरीब के बच्चे को एक रुपए से ज़्यादा नहीं देना पड़ता।"

"ठीक है देवी जी, पर ऐसी हालत में आपको गरीबी का सर्टिफ़िकेट लाना पड़ेगा।" और इतना कहकर मिस्टर जोयोमि मुँह फुलाकर खानेदार कागज़ की ओर देखने लगे। जो दर्ज कर दिया है क्या उसे काट दूँ? ये मूरख औरतें कितना तंग करती हैं।

मेरी माँ ने अपने झुर्रीदार छाल-सदृश हाथ जोड़ लिए।

"श्रीमान जी, हम तो सर्टिफ़िकेट के बिना भी गरीब ही हैं। आप हमारा यकीन करें।"

मिस्टर जोयोमि ने अचानक अपनी नज़रें हटाकर सिर झुका लिया।

"वह तो मैं भी देख रहा हूँ देवी जी, और मैं इसका यकीन भी करता हूँ, लेकिन मैं कायदे के खिलाफ कैसे जा सकता हूँ। आपको टाउन हाल से कागज़ लाना ही पड़ेगा।" यों तो टाउन हाल स्कूल से दस ही कदम पर था, फिर भी था बहुत-बहुत दूर। कोई भी औरत नंगे पैरों या चट्टियाँ पहने भी वहां कैसे पहुँच सकती थी ? यह ठीक है कि रात वाले चौकीदार दोबोश से माँ की जान-पहचान थी जो टैक्स के बिल दे जाता था, पर वह तो बहरा है। और हाँ, अमीन साहब मिस्टर चयका, पर वे कितने रूखे हैं।

खैर, हम जब आखिरकार किसी तरह टाउन हाल पहुँच पाए तब दोपहर बारह बजे का घण्टा बज रहा था। और तब तक दरवाज़ा बन्द हो चुका था। बाबूजी क्राउन में बीयर पीने चले गए थे।

अब हम क्या करें? मेरी माँ अपने जीवन में कभी शराबघर में न गई थीं, न वे बाबूजी को पहचानती थीं। इसलिए हम सीढ़ियों पर बैठ गए और चुपचाप उनके आने का इन्तज़ार करने लगे। घोड़े वाले ने हमसे सवाल-जवाब किए और तब बताया कि बाबूजी लँगड़े हैं और उन्हीं से हमारा काम बनेगा। सबेरे तो वे सिर्फ एक ही पैर से लँगड़ाते हैं, पर बीयर पी लेने के बाद दोनों पैरों से लँगड़ाने लगते हैं इसलिए हम उन्हें आसानी से पहचान सकेंगे।

सचमुच हमने उन्हें पहचान लिया। उस वक्त करीब दो बजे थे। पहले तो वे बड़े मज़े से बातें करते रहे। पर ज्यों ही

वे मोड़ के पत्थर से टकराए तो वे अचानक गरम हो गए।

"यहाँ क्या लेने आये हो, वह भी इस वक्त? इसके अलावा, जहाँ तक मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास अंगूरों का बाग भी है।"

"हाँ है तो, सिर्फ दो पट्टियाँ। एक पट्टी बिलकुल ऊसर है।"

वह लँगड़ा अब गरज उठा-

"वाह, वाह, हद कर दी! आपको गरीबी का सर्टिफिकेट चाहिए! बदमाश कहीं के, धोखेबाज़!"

वह लँगड़ाता हुआ बाज़ार के दूसरी तरफ चल दिया था, पर हमें उसकी गालियाँ अब भी सुनाई दे रही थीं। टाउन हाल के चौकीदार ने उसे सतर्क होकर सैल्यूट किया और फिर उसने अपनी आँखें हमारे ऊपर गाड़ दीं।

"चलो हटो, ए औरत! चलो यहाँ से, इसी में खैर है।"

हम कुछ-कुछ डर गए थे, पर टाउन हाल के छोर पर पहुँचते ही हम सँभल गए। मेरी माँ धुन की पक्की थीं।

"मैं क्या यों ही छोड़ने वाली हूँ। चलो बेटे, बयाकि के यहां चलें, वे तो टीचर हैं। वह हमेशा हमारी मदद करते हैं।"

मिस्टर बयाकि ने मुझे अक्षर-ज्ञान दिया था और वे फसल के वक्त हमेशा मेरे पास आते थे, यह देखने कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। वे बड़े दयालु व्यक्ति थे पर इस मामले में वे हमारी मदद न कर सके।

"बात यह है देवी जी, जिसके पास ज़मीन-जायदाद है उसे गरीबी का सर्टिफिकेट नहीं मिल सकता।" इसके पहले मैं कभी महसूस नहीं कर पाया था कि हम लोग ज़मींदार हैं।

सच पूछिए तो हमारी जायदाद दस कलामंडियों (कुलाटियों) में पार की जा सकती थी। बल्कि दसवीं कलामंडी पर हम पड़ोसी की ज़मीन में जा पड़ते। खुशकिस्मती से सारी ज़मीन पाताल तक रेतीली थी। अगर वह चिकनी मिट्टी होती, जो कीचड़ बन सकती तो न जाने हम कब के अपनी सारी ज़मीन को अपने जूतों से चिपकाए फिरते।

टीचर ने हमें सलाह दी कि सबसे अच्छा यह होगा कि मेरे पिताजी मैजिस्ट्रेसी के उन सज्जनों से बातचीत करने की कोशिश करें जिनके यहाँ एक ज़माने में मेरे बाबा अक्सर आया-जाया करते थे। क्योंकि एक ज़माने में मेरे बाबा शहर के सबसे अच्छे तमाखू वाले थे और इसलिए उन दिनों वे मशहूर-से आदमी थे। (यह तथ्य मैं अपने भावी जीवनीकारों के लाभार्थ अंकित कर रहा हूँ। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि हमारे परिवार में ख्याति मुझसे ही आरम्भ नहीं हुई।)

हमारे शहर का हरेक अफसर मेरे बाबा से ही तमाखू कुटवाता था क्योंकि वे जानते थे कि बुढ़ऊ के हाथ में एक चिलम-भर तमाखू भी नहीं चिपकेगी।

अगले दिन जब पिताजी शरम-लिहाज़ छोड़कर टाउन हाल के इन कुमानियाई

सज्जनों के पास गए तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने मेरे बाबा को बड़े प्रेम से याद किया। पर उनसे बात करने की अनुकम्पा सिर्फ बाबूजी ने ही की पर उन्होंने जो कहा वह यही था-

"अब समझे मार्टिन कि तुम्हें लयोश कोश्शुथ के नाम का इतना डंका नहीं पीटना चाहिए था, तब तुम पर आज ऐसी उंगलियाँ न उठतीं। "

टैक्स डिपार्टमेण्ट के काउन्सलर खुद भी 1848 की क्रान्ति के हामी थे। उन्होंने इतनी सलाह ज़रूर दी, "देखो, इसी महीने एक कमीशन अंगूर के बागों में ओलों के कारण जो हानि हुई है उसकी जाँच करने पहुँचेगा। शायद वे तुम्हें कोई कागज़ दे कि ओले क्यों पड़े, कैसे पड़े। वह कागज़ तुम्हें एक दरख्वास्त के साथ काउंसिल में पेश करना होगा। वैसे स्कूल की फीस से छूट तो दी ही जा सकती है, बस ज़रा लिहाज़ की ज़रूरत है। लेकिन ईश्वर के लिए कहीं लोगों से कहते मत फिरना कि मैंने यह सलाह दी है। मैं तो यों ही बदनाम हूँ कि लोगों को उभारता रहता हूँ।"

पिताजी मुझे टाउन हाल के भीतर नहीं ले गए, वहीं दरवाज़े पर ही छोड़ दिया। वहाँ जो नोटिस चिपके थे उन्हें पढ़ता-पढ़ता मैं अपना मन बहलाता रहा। किसी डाकू को पकड़वाने के लिए सौ मुहरों के इनाम का एलान हुआ था। उस भगोड़े के सिर की कीमत मेरे देश की नज़रों में सौ मुहर थी। पर मेरा अकलंक नन्हा जीवन किसी की नज़रों में छह रुपए पचास पैसे के लायक भी न था। इसका पता मुझे तब चला जब पिताजी लौटकर आए और उन्होंने बिना कुछ कहे मेरा हाथ पकड़ लिया। बाज़ार में मोची की दुकान तक पहुँचने के पहले वे कुछ नहीं बोले। फिर बड़ी मीठी और कोमल आवाज़ में उन्होंने पूछा-

"देखा, वे बढ़िया जूते कितने अच्छे हैं?"

"हूँ" और मेरा दिल बड़े ज़ोर से धड़क उठा क्योंकि मैं पहले ही जानता था कि अगला सवाल क्या होगा।

"अगर तुम्हें मैं किसी मोची के यहाँ बैठा दूँ तो कैसा रहे?"

मेरे मुँह से एक लफ्ज़ भी न निकला। बस मैंने अपना सिर हिला दिया। तब मैं दुनिया के रंग-ढंग क्या समझता था? तब

मैं कैसे जान सकता था कि मेरे बड़े होने तक मोचियों के लिए कैसे-कैसे धन्धे खुल जाएंगे? मैं तो बस इतना ही जानता था कि मोचियों के शागिर्द गन्दे होते हैं, वे कोलतार का काम करते हैं और मुझसे मुलाकात होने पर मुझे गड्ढे में धकेल देते हैं। काश मैं तभी पहचान सकता कि दुनिया उन्हीं की है जो धक्का देते रह सकते हैं।

बाद में घर में विराट सभा बैठी। हमने सोफा, आईना, लिहाफ, ऐशो-आराम की जो-जो चीज़ें रुपया बन सकती थीं सबका हिसाब लगाया ताकि एक रुपया साढ़े छह बन जाए। यहाँ तक मैंने अपनी दो साल की बहन का पालना भी जाँच देखा, वह अब बड़ी हो गई थी और उसे कोने में भी सुलाया जा सकता था पर इन सबसे भी काम नहीं चल सकता था। अगर स्कूल की फीस निकल भी आई तो भी किताबों के लिए क्या बचेगा? हमने एक-एक करके अपने रिश्तेदारों के भी नाम लिए पर वे भी तो सब-के-सब ओलों की चपेट में आ चुके थे। अन्धा फूटी आँखों की क्या मदद करेगा?

उस रात मुझे बहुत बुरा सपना दिखा। मैं कोलतार के कढ़ाव में पड़ा हूँ, मोची के शागिर्द मेरे पैरों को कोलतार की डोर से बाँधकर घसीटते हुए बाज़ार ले जा रहे हैं। जब मैं जागा तो सपने में आँसू बहाने की वजह से मेरी आँखें सूजी हुई थीं।

तब तक पिताजी अंगूर के बगीचे पर जा चुके थे। जब भी उन पर ऐसी मुसीबतें आ पड़तीं जिन पर न हँसा जा सकता था न कोसा जा सकता था, तभी वे वहाँ जा छिपते थे। (उफ! अगर उस 'जायदाद' का मेरे पास कुत्ते की खोह बराबर हिस्सा भी बच रहता, तो मैं खुद भी न जाने कितनी बार वहाँ जा छिपता)। मेरी माँ ने मुझे गोद में भर लिया, हालाँकि हम लोग शर्मीली प्रकृति के थे और ऊँचे लोगों के रंग-ढंग के लिए हमारे पास समय नहीं होता था। यही नहीं, उन्होंने एक लम्बे-से कंघे से मेरे बिखरे बालों को तरतीब देने की भी कोशिश की।

"कोई फिकर नहीं मेरे बच्चे! अभी तुम शागिर्द हुए थोड़े ही हो। रात को मुझे राइट रेवरेण्ड आगोच का ध्यान आ गया। वे गरीबों पर बड़ी दया रखते हैं। पर देखना, उनका हाथ ज़रा अच्छी तरह चूमना।"

सचमुच राइट रेवरेण्ड आगोच बड़े भले आदमी थे। वे हमेशा चर्च के चक्कर काटते रहते थे - ऐसी प्रकाण्ड मूर्ति की तरह जिसमें अचानक जान पड़ गई हो। जब भी कोई भी औरत या बच्चा उधर से गुज़रता तो वे उसके चूमने के लिए अपना हाथ बढ़ा देते। उनका हाथ चूमे बिना वहाँ से गुज़रना किसी के भी लिए मुमकिन न था। वे शहर भर के लोगों के नाम जानते थे। ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे।

"ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, श्रीमती मीरा। कहो, क्या हालचाल है, क्रोन स्ट्रीट में कैसा

चल रहा है? क्या किसी का नामकरण होना है या कोई मर गया है?" उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!"

लेकिन सज्जन पूरी तरह विमुख नहीं होते। हालाँकि हमने उन्हें नाराज़ कर दिया था तथापि हमारे विदा लेते वक्त उन्होंने हमें अपना सुवासित हाथ चूमने से नहीं रोका।

अब दरअसल सारा दारोमदार मुझ पर था। यहाँ तक कि माँ ने भी मुझ से

पूछा कि मैं किस तरह का शागिर्द बनना चाहता हूँ। हे भगवान्! मैं भला इसके अलावा और क्या कह सकता था कि मैं बुकसेलर होना चाहता हूँ। मैं यह बात काफ़ी हल्के मन से कह सका और इस पर मेरी माँ के चेहरे पर भी चमक आ गई। शायद उन्हें यह ध्यान आ रहा हो कि मैं इतवार की शाम को खाई के किनारे बैठाकर उन्हें कैसी-कैसी सुन्दर कहानियों की किताबें सुना सकूंगा।

उन दिनों हमारे शहर में मिस्टर रनेज़इ ही एक-मात्र बुकसेलर थे। संयोग से उन दिनों उनकी दुकान की खिड़की पर एक नोटिस टँगा था कि वे किसी अच्छे घर के लड़के को शागिर्द बनाना चाहते हैं। इस बात का मुझे ज़रा डर था क्योंकि हमारा घर कुछ-कुछ डाँवाडोल था और कभी-कभार छत की खपरैलें खिसकने लगती थीं। पर इससे कोई कठिनाई पेश होती नहीं मालूम दी। मिस्टर रनेज़इ ने पहले तो मुझे अपनी नंगी आँखों से जाँचा और फिर चश्मा चढ़ाकर और उसके बाद उन्होंने घोषणा की कि वे मुझे बुकसेलर बना देंगे और इसके लिए वे बस तीन रुपया महीना चार्ज करेंगे।

उस दिन की शाम मैं कभी न भूल पाऊँगा। उस बार का पतझर, और सालों की अपेक्षा ज़्यादा गर्म था हालाँकि चिड़ियों ने विदा लेना शुरू कर दिया था। मेरी माँ कुएँ पर कपड़े धो रही थीं और मैं नाँद की छाया में उनके पैरों पर बैठा था। न तो उन्होंने कोई शब्द कहा न मैंने, हम बस धीमे-धीमे बिसूरते रहे। उनके आँसू नाँद में गिर रहे थे और मेरे आँसू उनके पैरों पर।

लेकिन मेरी सच्ची यातना अगले दिन सबेरे ही आई। मेरे सहपाठियों ने प्रार्थना के लिए स्कूल जाते समय खिड़की, दरवाज़े और बाड़ खटखटाई और गेट की सन्धों में से आवाज़ लगाई।

"फ्रान्सिस, फ्रान्सिस!"

इसे दान्ते अपने महाकाव्य 'इनफर्नो' (नरक) में शामिल करना भूल गए।

मैं छप्पर, सुअर के तबेले और बुर्जी में छिप गया पर बेकार; किलकते बच्चों की भनभनाहट ने मेरा पीछा न छोड़ा। एक हफ्ते के बाद यह कष्ट मेरे लिए असह्य हो उठा। जब मेरे दोस्त मेरे घर से गुज़रते, मैं नुक्कड़ तक उनके आने की बाट देखता रहता और फिर उनके पीछे दौड़ जाता। बाज़ार में मैं खोमचे वालियों के बीच टहलता रहता। आठ बजे की स्कूल की घण्टी होते ही टीचरों और लड़कों, दोनों के कदम तेज़ हो जाते। तब मैं स्कूल के चक्कर काटना शुरू करता, पहले दूर से, और फिर चक्कर लगातार छोटे होते चलते। शायद स्वर्ग का दरवाज़ा बन्द हो जाने पर आदम ने भी यही किया होगा। अगर दुनिया में ऐसा एक भी आदमी है जो यह स्वाद ले चुका हो कि आदम ने क्या भोगा था तो वह मैं हूँ।

जो हो, आदम को सिर्फ स्वर्ग से ही निकाला गया था, स्कूल से नहीं और वह सिर्फ खाने की मेज़ से ही वंचित हुआ था पुस्तकों से नहीं; वह सहा जा सकता था,

उसकी तो आदत पड़ सकती थी। चार ही दिन बाद मैं बाड़ के भीतर था। हाथ-पैरों के बल सरकता मैं हैड मास्टर के दरवाज़े के आगे से गुज़रता लम्बे, सफेदी किए कारीडोर को पार करके तीसरी क्लास के खुले दरवाज़े पर जा पहुँचा। मैं सब-कुछ सुनता रहा, टीचर की व्याख्याएं, बच्चों के जवाब, बूढ़े चपरासी का घण्टी की तरफ बढ़ना। उसकी आहट सुनते ही मैं स्कूल से पलटकर जल्दी-जल्दी घिसटता सड़क पर आ गया।

सितम्बर के मध्य तक किसी तरह की कोई मुश्किल न हुई। जिस साइंस के कुएँ से इस बेचारे, गन्दे, नन्हें बच्चे को कँटीले तारों ने अलग कर दिया था उस कुएँ से गुपचुप रीति से भी प्यास बुझाई जा सकती थी। पर हुआ यह कि टीचर मिस्टर ऐस्टिच तीसरे दर्जे में लैटिन भाषा का गुण-गान कर रहे थे। कितनी सुरीली, कितनी प्रखर कितनी कसी हुई है यह भाषा और क्यों कोई भी भाषा इसकी बराबरी नहीं कर सकती!

"लेटिन का वाक्य है : Unus es Dens इसे हंगरी भाषा में तुम में से कौन कहना जानता है?"

गहरी खामोशी।

"अरे, कोई-न-कोई तो कोशिश करो। मैथ्यू नाथ?"

मैथ्यू नाथ, एक रियासत के स्टुअर्ड का बेटा, कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी था और दूसरे दर्जे में मेरा प्रतिद्वंद्वी था। इस चुनौती पर वह उठ खड़ा हुआ!

"ईश्वर, तू एक है।"

"नहीं, यह बिल्कुल सही नहीं है। यह किस तरह का शब्द विन्यास है?"

"मेरा मतलब था ईश्वर एक तू है।"

"नहीं, नहीं; क्या तुम्हें नहीं लगता कि लैटिन वाक्य में कुछ और भी बात कही गई है?"

मेरा मन आतंक-ग्रस्त होकर धक-धक करने लगा, पर मैं अपने को रोक न सका, चीखकर कह ही उठा:

"बस तू ही ईश्वर है...'

(उसी क्षण मेरा माथा फर्श से जा टकराया) क्योंकि मैं उत्तेजना के मारे बेहोश हो गया था। उफ, यह मैंने क्या कर डाला, अब क्या होगा?

जो हुआ वह यह कि लैटिन टीचर मुझे बाँहों में भरकर क्लास में ले गए और उसके बाद 'ज़मींदार' मार्टिन मोरा से कभी कोई फीस नहीं माँगी गई। Unus es Dens बस तू ही ईश्वर है। चाहे तू कुछ दूर पर है, चाहे तुझे धरती पर नज़र डालने का ज़्यादा समय न हो...

जो हो, सितम्बर मेरे लिए अब भी मेरे जीवन का सर्वाधिक विषादमय महीना है। हालाँकि मैं उन लोगों में हूँ जो भीतर ही भीतर रोते हैं, फिर भी जब कभी मैं सितम्बर के महीने में किसी नन्हें बच्चे को सिर झुकाए देखता हूँ तो मेरी आँखों में आँसू आ ही जाते हैं।

फ्रेरेन्त्ज़ मोरा - जन्म 1879, निधन 1934

पुस्तक समीक्षा

प्लास्टिक की घुसपैठ

● के. आर. शर्मा

पुस्तक - प्लास्टिक ही प्लास्टिक
लेखक - सुबोध जावड़ेकर
प्रकाशक - सी.एस.आई.आर, नई दिल्ली
पता - डॉ. के. एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली - 110 012
प्रकाशन - 1992, पृष्ठ - 104, मूल्य - 12 रुपए

आज हमारे दैनिक जीवन में प्लास्टिक ने गज़ब की घुसपैठ कर रखी है! बाल्टी, मग, टूथब्रश, रस्सी, रेडियो, टी.वी., बिजली के स्विच.... और भी न जाने क्या-क्या चीज़ें प्लास्टिक की बनी हैं या उनमें प्लास्टिक मौजूद है। अब तेल, घी, दूध जैसे तरल पदार्थ लाने के लिए आप यदि घर से बर्तन न भी ले जाएं तो कोई बात नहीं, पोलिथीन की थैली जो उपलब्ध है!

सौ साल पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि कभी पानी भी पोली-पैक में मिलने लगेगा! चारों तरफ नज़र दौड़ाएं तो पाएंगे कि मध्यम-वर्गीय घरों में तो प्लास्टिक ने गज़ब की घुसपैठ कर रखी है। और तो और इसने कई जगह तो भारी और पारंपरिक पदार्थों (जैसे लोहा) का स्थान तक ले लिया है।

आखिर प्लास्टिक है क्या? इसकी खोज कैसे हुई? कौन था इसे खोजने वाला? प्लास्टिक से इतनी रंग-बिरंगी चीज़ें कैसे बनती हैं? हम आजकल जिस धड़ल्ले से दैनिक जीवन में इसका उपयोग कर रहे हैं क्या वह सुरक्षित

है? ये कई सवाल हैं जिनके जवाब 'प्लास्टिक ही प्लास्टिक' नाम की किताब में मिल सकते हैं।

प्लास्टिक के तमाम पहलुओं के बारे में यह पुस्तक अपने में अनूठी जानकारियां संग्रहित किए हुए है। इस किताब का प्रकाशन सी.एस.आई.आर. (प्रकाशन और सूचना निदेशालय) ने किया है, इस उद्देश्य से कि प्लास्टिक के बारे में जानकारी जन-सामान्य तक पहुंच सके।

असल में सी.एस.आई.आर. की पचासवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में निर्णय लिया गया था कि विज्ञान के प्रसार के लिए पुस्तकों की एक श्रृंखला छापी जाए। इसके लिए खगोलिकी, मौसम विज्ञान, समुद्र विज्ञान, नए पदार्थ, रोगविरोधी विज्ञान (इम्यूनोलॉजी) तथा जैव प्रौद्योगिकी जैसे विषयों को चुना गया। अभी तक इस कड़ी की सागर से संपदा, जीवन : **कोशिका से कोशिका तक**, **हुक्म का गुलाम**, **सितारों का संसार** आदि शीर्षक से किताबें प्रकाशित हुई हैं। **प्लास्टिक ही प्लास्टिक** इसी कड़ी का एक हिस्सा है।

प्लास्टिक नामक पदार्थ ज़्यादा पुराना नहीं है। कोई सवा सौ साल पहले संयोगवश इसकी खोज हुई! स्विटज़रलैंड का एक वैज्ञानिक श्योनबेन कुछ प्रयोग कर रहा था कि गंधक के अम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड), और शोरे के अम्ल (नाइट्रिक एसिड) से भरे बीकर फर्श पर गिर पड़े...! इस मिश्रण को उसने जब सूती कपड़े से पोंछने की कोशिश की तो उसे मिला एक कृत्रिम बहुलक 'नाइट्रो सेल्युलोज़'। बस यहीं से शरुआत होती है प्लास्टिक की खोज की कहानी की। नाइट्रो सेल्यूलोज़ का दुर्गुण है कि यह कठोर होता है और तेज़ी से आग पकड़ लेता है। तो इस पदार्थ में बदलाव करके इसको उपयोगी बनाने की तरफ ध्यान गया एक दूसरे वैज्ञानिक पार्केस का। उसने इसमें कुछ बदलाव करके एक पदार्थ बनाया किंतु यह भी नरम और आसानी से टूटने वाला था। तभी 1869 में अमेरिका के वेस्ले और हयात् बंधुओं ने नाइट्रो सेल्युलोज़ में कपूर मिलाकर एक और पदार्थ बनाया। इसे गर्म करके इच्छानुसार आकृति में ढाला जा सकता था। इस प्रकार पहली बार प्लास्टिक का निर्माण हुआ। इसका नाम पड़ा 'सेल्युलाईड' । हालांकि सेल्युलाईड भी जल्दी से आग पकड़ लेता है लेकिन पहले-पहल प्लास्टिक का यही रूप सामने आया।

प्लास्टिक के क्षेत्र में ही एक और दिलचस्प संयोग बना उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में - जब डह बैकलैंड नामक वैज्ञानिक ने पाया कि फिनॉल तथा फॉर्मेल्डिहाईड (मृत प्राणियों को सड़ने से बचाने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला पदार्थ) को गर्म किया

जाता है तो एक चिपचिपा पदार्थ, रेज़िन बनता है। उसने पाया कि इस चिपचिपे पदार्थ को गलाकर सांचे में ढाला जा सकता है। जो ठंडा होने पर कठोर हो जाता है। इस पदार्थ को बैकलेंड के नाम के आधार पर बैकेलाइट कहा जाने लगा। बैकेलाइट एक ऐसा पदार्थ है जो प्लास्टिक उद्योग का आरंभ बिंदु था।

रासायनिक रूप से देखा जाए तो प्लास्टिक एक समान इकाइयों की लंबी-लंबी श्रृंखलाएं हैं। यानी कि प्लास्टिक बहुलक (पॉलिमर) हैं। बैकेलाइट की खोज के बाद तो और तेज़ी से इस दिशा में प्रयोग होने लगे। आजकल प्लास्टिक मुख्यतः पेट्रोलियम पदार्थों से बनाए जाते हैं। पोलिथीन और पीवीसी इस तरह बनने वाले दो प्रमुख प्लास्टिक हैं। विभिन्न किस्म के प्लास्टिकों में पोलिथीन, पीवीसी, पोलीस्टराइन और पोलीप्रोपिलीन का प्रमुख स्थान है। हमारे देश में उपरोक्त चारों को ही तरह तरह के प्लास्टिकों का मुख्य स्रोत माना गया है।

इस किताब में प्लास्टिक की खोज के साथ ही इसके विभिन्न स्वरूपों को अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जैसे खाना बनाने के लिए विभिन्न तरह की खाद्य सामग्री उपलब्ध हो तो उससे एक से अधिक तरह के व्यंजन बनाए जा सकते है लगभग उसी तर्ज़ पर प्लास्टिक को बेहतर और आकर्षक बनाने के लिए मसाले बनाम रंग डालने पड़ते हैं। आज हमारे सामने बहुत ही अलग-अलग तरह के प्लास्टिक मौजूद हैं। कोई एकदम नरम तो कोई एकदम

बढ़ता प्लास्टिक कचरा : दुनिया परेशान है कि इसका क्या करें।

कठोर, कुछेक को तो गर्म करके पुनः ढाला जा सकता है या यूं कहें कि उनकी रीसाइक्लिंग की जा सकती है। गुणों के हिसाब से भी इनमें आपस में अंतर है जैसे आमतौर पर 100 डिग्री सेंटीग्रेड पर सभी प्लास्टिक पिघल जाते हैं पर टेफ्लॉन नाम का प्लास्टिक 260 डिग्री सेंटीग्रेड पर भी नहीं पिघलता।

सुबोध जावड़ेकर द्वारा लिखी गई यह किताब प्लास्टिक की खोज से लगाकर अब तक तैयार किस्मों तथा इसके रसायन शास्त्र की जीवंत तस्वीर पेश करती है। कुल मिलाकर किताब उनके लिए और भी उपयोगी बन जाती है जो अणु परमाणु के संकेत समीकरण की भाषा समझ सकते हैं।

आज के युग को प्लास्टिक युग कहें तो कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। एक तरफ तो इसका इतना प्रचार है पर दूसरी तरफ इसके कारण एक बड़ी समस्या आन खड़ी हुई है। जैसे अनेक चीज़ें सड़ गल कर मिट्टी में मिल जाती हैं परन्तु प्लास्टिक ठीक इसके विपरीत प्रकृति में जैसे के तैसे पड़े रहते हैं। हमने प्लास्टिक बनाना और उपयोग करना तो सीख लिया लेकिन इसको नष्ट करने के तरीके अभी तक नहीं खोजे जा सके हैं। वैसे इसको ठिकाने लगाने का एक तरीका है - इसे इकट्ठा कर पुनः उपयोग लायक बनाना। हमारे आसपास पड़े कचरे से बीना गया प्लास्टिक पुनः चक्रीकरण के लिए भेज दिया जाता है। इसके बावजूद बेकार पड़े प्लास्टिक की मात्रा में से बहुत थोड़े का ही इस तरह उपयोग हो पाता है। लेखक ने अपनी पुस्तक में इस बात की ओर इशारा किया है कि अब हमें ऐसे प्लास्टिक बनाने चाहिए जिन्हें प्रकृति हज़म कर जाए।

किताब की शुरुआत में बताए गए हैं, अलग-अलग देशों में प्लास्टिक खपत के आंकड़े। तुलनात्मक रूप से भारत में इसकी खपत बहुत कम है। इसको आधार बना कर लेखक ने लिखा है - 'इससे पता चलता है कि हमें अभी और कितनी प्रगति करनी है।' इस कथन से जो सवाल खड़ा होता है वो विकास के बारे में सोचने के हमारे तरीके की ओर इशारा करता है कि क्या प्लास्टिक उत्पादन व खपत के मामले में अन्य देशों की बराबरी करना ही प्रगति का सूचक है?

यह कहते हुए शायद इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि विकसित कहे जाने वाले देश इस समय प्लास्टिक कचड़े के कारण, उनके पर्यावरण को पैदा खतरे से जूझ रहे हैं और हर साल करोड़ों रुपए प्लास्टिक का कोई ऐसा विकल्प ढूंढने में खर्च कर रहे हैं जो प्रकृति को नुकसान न पहुंचाए। ●

(के. आर. शर्मा - होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध, एकलव्य के उज्जैन फील्ड सेंटर में कार्यरत)

एकलव्य के प्रकाशन

चकमक - मासिक बाल विज्ञान पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रुपए, डाकखर्च मुफ्त

संदर्भ - शैक्षिक विषयों पर केंद्रित शिक्षकों की द्वैमासिक पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क - 35 रुपए, डाकखर्च मुफ्त
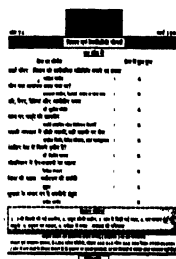
स्रोत - विज्ञान एवं तकनॉलॉजी फीचर सेवा, मासिक पत्रिका के रूप में भी उपलब्ध, वार्षिक शुल्क - 100 रुपए (संस्थाओं के लिए 200 रु.)

खेल खेल में - माचिस की तीलियों, डिब्बी और वॉल्व ट्यूब जैसी चीज़ों से विज्ञान के कुछ सस्ते, सरल और रोचक मॉडल बनाने की जानकारी, मूल्य - 5 रुपए
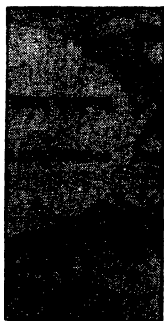
कबाड़ से जुगाड़
आसपास बिखरे पड़े बेकार सामान से विज्ञान के प्रयोग करने और समझने की पुस्तिका, पृष्ठ - 68, मूल्य- 10 रुपए

खिलौनों का बस्ता - कबाड़ से जुगाड़ की तर्ज़ पर कुछ नए प्रयोगों और मॉडलों की किताब, पृष्ठ - 68, मूल्य- 10 रुपए
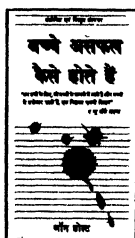
बच्चों के मन में स्कूल को लेकर इतना भय क्यों? क्या कारण है कि वे अपनी सामर्थ्य का एक छोटा-सा हिस्सा ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं? ऐसे ही कई सवालों को लेकर लिखी गई प्रसिद्ध शिक्षाविद् जॉन होल्ट की किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' का हिंदी रूपान्तरण - 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' पृष्ठ - 283 मूल्य पेपरबैक - 40 रुपए, सजिल्द - 100 रुपए

इनके अलावा भी....

जनविज्ञान का सवाल - भोपाल गैस त्रासदी को लेकर एकलव्य द्वारा तैयार की गई पोस्टर प्रदर्शनी की सचित्र पुस्तिका, मूल्य - 4.00 रु. डाक से 5.00 रु.

माचिस की तीलियों के रोचक खेल (पहेलियां) - मूल्य - 3.00 रु. डाक से 4.00 रु.

सामाजिक अध्ययन शिक्षण : एक प्रयोग - एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी देती पुस्तिका, मूल्य - 5.00 रु. साधारण डाक से 6.00 रु

विज्ञान क्या है? (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य - 2.50 रु. साधारण डाक से 3.00 रु.

इतिहास क्या है? (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य - 2.50 रु. साधारण डाक से 3.00 रु.

प्यारा लड्डू - बच्चों द्वारा लिखी कविताओं का संकलन, मूल्य - 7.00 रु. डाक से 8.00 रु.

लोमड़ी और ज़मीन - बच्चों द्वारा लिखी कविताओं का संकलन, मूल्य - 10.00 रु. डाक से 11.00 रु.

हमारी सेहत हमारी लड़ाई - गैस पीड़ितों के लिए एक स्वास्थ्य पुस्तिका, मूल्य 5.00रु. डाक से 7.00रु.

बोलो तुम क्या चुप बैठोगे - नर्मदा पर एक लंबी कविता, मूल्य - 2.00 रु.

जवाब-दर-सवाल - जनगीत, मूल्य 5.00 रु. डाक से 6.00 रु.

एकलव्य के शैक्षिक प्रयोगों में विकसित सामग्री
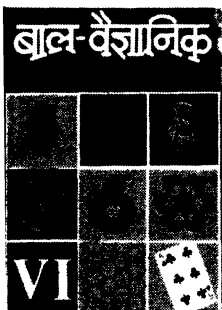
बाल वैज्ञानिक कक्षा 6,7 और 8
होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत म.प्र. की तकरीबन 500 माध्यमिक शालाओं में लागू विज्ञान की पुस्तकें,
तीन किताबों का सेट

खुशी-खुशी कक्षा 1 से 5 तक - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए तैयार पुस्तकें,
नौ किताबों का सेट
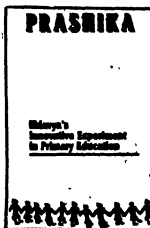
प्राशिका रिपोर्ट
एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (प्राशिका) में नवाचार को डॉक्यूमेंट करती रिपोर्ट (अंग्रेज़ी में)। रत्नासागर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ - 160, मूल्य - 75 रुपए

शिक्षा बने रुचिकर
बंबई के कॉमेट मीडिया फाउंडेशन द्वारा तैयार की गई वीडियो फिल्म, जिसमें एकलव्य की तमाम शैक्षिक गतिविधियों को समेटा गया है। हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध
समय - 60 मिनट मूल्य - 350 रुपए

[सा]माजिक अध्ययन कक्षा 6,7 [औ]र 8 - एकलव्य के सामाजिक [अ]ध्ययन कार्यक्रम में विकसित की [ग]ई पुस्तकें तीन किताबों का सेट

एकलव्य के कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के बारे में अधिक जानकारी, एकलव्य, ई - 1 / 25 अरेरा कॉलोनी भोपाल (म.प्र.) - 462 016 से मिल सकेगी। सामग्री के लिए राशि अग्रिम भेजें।

हाथी का बच्चा

दरअसल यह सवाल एक बच्चे ने पूछा था और इसी सवाल को हमने संदर्भ के पिछले अंक में छापा था। शायद आपने भी इस सवाल का जवाब खोजने की कोशिश की हो। बहरहाल हमने इस सवाल की तहकीकात की।

सबसे पहली बात कि हाथी का बच्चा दूध पीता है यह तो उस सवाल पूछने वाले बच्चे को मालूम है। दूसरा यह कि वह पीता कैसे है, मतलब कि उस बच्चे के दिमाग में दो बाते आई होंगी कि हाथी का बच्चा सूंड से पीता है या मुंह से। ज़ाहिर है कि हाथी जब पानी पीता है तो वह सूंड में भरता है और मुंह में डाल लेता है। सोचिए कि सूंड से वह मूंगफली या एक सिक्का भी ज़मीन से उठा लेता है तो सूंड हाथी के लिए एक खासा हथियार है। वह अपने भोजन को सूंड से ही उठाकर मुंह तक लाता है। केवल पता इतना करना है कि हाथी का बच्चा अपनी मां के थनों से दूध कैसे पीता है?

अनेक लोगों से पूछा कि किसी ने हथिनी को अपने बच्चे को दूध पिलाते देखा है। यानी कि शुद्ध रूप से यह सवाल अवलोकन पर आधारित है। मैंने खुद भी जीवविज्ञान पढ़ा पर मैं भी अचंभित हुआ। मुझे भी इस सवाल का जवाब खोजने में दिलचस्पी जागी। सोचा कि क्यों न उन लोगों से पूछा जाए जो हाथी पालते हैं। अक्सर गांवों शहरों में साधु लोग हाथी लेकर घूमते हैं। एक दिन हाथी वाले बाबा से पूछा - बाबा ने कहा हमने हाथी तो पाला है पर बच्चा दूध कैसे पीता है यह कभी नहीं देखा, शायद सूंड से ही पीता होगा। हमने अपनी तहकीकात जारी रखी। इसी बीच अन्य जीवविज्ञानियों से पूछा, उनका भी कहना था कि पढ़ा तो नहीं और देखने में भी नहीं आया। अलबत्ता इस बीच अनेक लोगों से पूछताछ रखी। एक साधु ने बताया कि हां उसने हाथी के बच्चों को दूध पीते देखा है, उसने बताया कि बच्चा मुंह से ही दूध पीता है सूंड से नहीं।

चौपायों जैसे कि गाय भैंस बकरी में थन पिछली टांगों के नज़दीक पेट पर होते हैं जबकि हथिनी के थन अगली टांगों के नज़दीक यानी छाती पर होते हैं। जब बच्चों को दूध पीना होता है तो वह अगली टांगों के पीछे से, बगल से अपनी सूंड को ऊपर करता है और मुंह में दूध चूसता है।

● के. आर. शर्मा
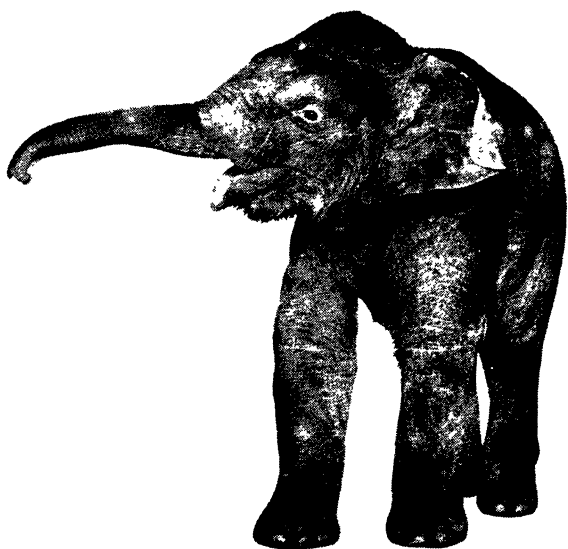
प्रकाशक: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रक: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011

12765
(U.S.A.)
CUBA
BRAZIL
BOLIVIA
ALGERIA
CHAD
SUDAN
ZAIRE
MADAGASCAR
TURKEY
U.S.S.R.
IRAN
ARABIA
OMAN
INDIA
SRI LANKA
CHINA
VIETNAM
PHILIPPINES
MALAYSIA
INDONESIA
NEW ZEALAND